10.1





आसनों द्वारा काय चिकित्सा



लेखक :
ब्रह्मवर्चस्



प्रकाशक :
युगान्तर चेतना
शान्ति कुञ्ज, हरिद्वार।

मवार] १९८२ [मूल्य ४)००

ेश प्रिंटिंग प्रेस, गली रानपाल, मण्डी रामदास, मथुरा।

विषयानुक्रमणिका

—※ ※—

—:०:—

प्रथम अध्याय

आसन-व्यायाम : एक समग्र स्वास्थ्य संवर्धन प्रक्रिया

आसन व्यायामादि के माध्यम से रोग निवृत्ति व शरीर वल संवर्धन दोनों ही सम्भव हैं, यह सभी जानते हैं। वहु प्रचलित होने पर भी योग विज्ञान की यह धारा वहुसंख्य व्यक्तियों द्वारा सही प्रकार न तो समझा जाती है, न ही व्यवहार में अपनाई ही जाती है। 'योग' शब्द में यों तो अक्षर मात्र दो ही हैं किन्तु इस छोटे से शब्द का प्रभाव क्षेत्र अति विस्तृत है। स्थूलतम से लेकर सूक्ष्मतम प्रक्रियाओं में योग की अपनी भूमिका व प्रतिक्रियाएं हैं। स्थूल व्यायाम से प्रारम्भ होकर सूक्ष्म व्यायाम द्वारा चक्र-उपत्यिकाओं पर दवाव डालने वाला यह क्रम आहार-विहार के नियमों के पालन के माध्यम से व्यक्ति को आरोग्य की स्थिति तक ले जाता है, अंतः में विद्यमान जीवनी शक्ति वढ़ाता है। इस क्रम से आगे वढ़ते हुए ही वह स्थिति आती है जव व्यायाम के साथ उपासना भी जुड़ जाती है और तव यह 'योग साधना' वन जाती है।

योग की साधना व व्यायाम इन दो धाराओं में अन्तर समझा जाना चाहिए। नहीं तो वह भ्रम हमेशा वना रहेगा जो विदेशियों को कुछ आसन, मुद्रा-वन्ध आदि सिखाकर महन्त गणों ने

साधना का पर्याय बताकर उनके मन में दृढ़ता से बिठा दिया है। योग साधना एक उच्चस्तरीय अन्तरंग प्रक्रिया है जो संवेदना के धरातल पर चलती है। आत्मा और परमात्मा के मिलन की इस अद्वैत स्थिति को हाथ पाँव हिलाने डुलाने तक सीमित न मानकर उच्चस्तरीय साधनाओं का स्वरूप माना जाना चाहिए। योग व्यायाम-हठयोग की वे प्रक्रियाएँ हैं जो व्यक्ति के दृश्य शरीर को तो नहीं-मानवी अन्तराल के सूक्ष्म शरीर जीवनी शक्ति को प्रभावित करती हैं। स्थूल व्यायाम-अखाड़े-जिमनेशियम की कसरतें, दौड़ लगाना, डीप ब्रीदिंग आदि के अभ्यास दृश्य शरीर को मजबूत बनाते हैं माँस पेशियाँ मजबूत करते हैं व शरीर-सौष्ठव बढ़ाते हैं। इनकी भी महत्ता अपनी जगह है। पर इनमें व आसनादि व्यायामों में काफी अन्तर है। वे सूक्ष्म शरीर को प्रभावित कर उन अन्दरूनी अंगों को प्रभावित करते व उनकी मालिश करने में सहायक सिद्ध होते हैं जो साधारणतया स्थूल व्यायामों-कसरतों की पकड़ में नहीं आतीं। आसन, मुद्रा, प्राणायाम, बंध प्रक्रिया इन्हीं में आती है। हठयोग की यही क्रियाएँ तब उच्चस्तरीय साधनाओं की सहयोगी बन जाती हैं, जब उन्हें ध्यानयोग-भावयोग की प्रक्रिया के प्रयोजन से साधा जाता है। चित्त वृत्ति निरोध में सहायक इन आसनों के अध्यात्मपक्ष की पातंजल योग दर्शन वाली चर्चा तो "साधना से सिद्धि" ग्रन्थ में की गयी है व उनके संयुक्त प्रयोगों के स्वरूप को वहाँ विस्तार से समझाया भी गया है।

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य अलग है। बहुसंख्य व्यक्ति आज अप्राकृतिक जीवन के अभ्यस्त हो गये हैं। कृत्रिम जीवन ने जिस प्रकार आज के व्यक्ति को रोगग्रस्त बना दिया है उसे दृष्टिगत रख ऐसे सरल विधि-विधान खोज निकालने अनिवार्य हैं, जिन्हें हर वर्ग का व्यक्ति कम से कम समय में बिना किसी कठिनाई के प्रशिक्षण के नियमित रूप

से उसके साथ जो सक्रिय बना सके, प्रतिकूलताओं से जूझने हेतु सामर्थ्य इकट्ठी कर सके। आहार-विहार एवं मनोबल ये तो प्रारम्भिक शर्तें हैं जिन्हें पूर्णरूपेण पाये बिना कोई भी विधि-विधान सफल नहीं हो सकता। इसी कारण पुस्तिका के प्रारम्भ में ही स्वास्थ्य रक्षा के चौबीस स्वर्णिम सूत्रों की चर्चा की गयी है, जिन्हें न्यूनाधिक रूप में अपनाकर साधारण व्यक्ति भी अपने गये बीते स्वास्थ्य को फिर वापस पटरी पर ला सकते हैं।

योग व्यायाम अथवा आसन क्रियाएं इन तीन शर्तों का उत्तरार्ध या पूरक मानी जा सकती हैं। आसन यों तो कई प्रचलित हैं पर कुछ स्थान ऐसे हैं जिन पर उनके प्रभाव को दृष्टिगत रख विभाजन अलग ढंग से किया गया है। यह मानकर चला गया है कि शरीर की निष्क्रियता ही रोगों को आमंत्रण देती है। यदि सही अभ्यास क्रम से कुछ अंग विशेषों पर पर्याप्त दबाव डाला जा सके तो अंतः की निष्क्रियता को मिटाया व एकत्र विजातीय द्रव्यों को निष्कासित किया जा सकना शक्य है। प्रस्तावित आसन क्रम स्नायु-बन्धन, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों व अन्य नाजुक अंगों-चक्र-उपत्यिकाओं पर दबाव डालकर उन अंगों को झकझोरता है व रोगों की संभावना को टालता है। शरीर को छह भागों से बाँटा गया है और उनमें से प्रत्येक के लिये २-२ वर्ग बनाये गये हैं। ये चिर प्रचलित आसनों से मिलते जुलते ही हैं पर उनमें दो या तीन का समावेश हो जाने से अंग संचालन का अतिरिक्त विशेष लाभ भी है। अगले अध्यायों में इन्हीं वर्ग विशेष यथा—पैर, पेट एवं पेडू, रीढ़, फेफड़े व हृदय, कंधे व हाथ तथा गरदन व मुँह के लिए २-२ इस प्रकार बारह आसन क्रमों की चर्चा की गयी है। चित्रों के माध्यम से उनके क्रम को समझाया भी गया है। वे जिन अंगों को प्रभावित करते हैं, उनके चित्र भी साथ हैं, ताकि प्रारम्भिक स्थिति के विद्यार्थी को अपनी अंग संरचना के ज्ञान

में इन्हें समझने में कोई कठिनाई प्रतीत न हो। जो व्यक्ति अन्य गुरुजनों से मार्ग दर्शन प्राप्त कर अथवा पूर्व अभ्यास के नाते शास्त्रोक्त व प्रचलित आसन क्रम को करते आये हैं, उन्हें यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि यह आसन योग किस आसन विशेष के समीप है अथवा मिलता जुलता है। इन अंगों के कमजोर होने से हानि व आसन द्वारा सक्रिय होने से लाभों का वर्णन कर अभ्यासी विद्यार्थियों को अपने लिये योगक्रम स्वयं चुनने के लिये प्रेरित किया गया है। अपनी योग व्यायाम पद्धति का विकास अपने ही ढंग से किया गया है ताकि न केवल रोगी वरन् स्वस्थ व्यक्ति भी इन्हें अपना कर भावी आक्रमण को टाल सकते हैं। इसके प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था भी गायत्री नगर के आरण्यक प्रशिक्षण में की गयी है। अंत में कुछ ऐसे वर्गों के लिये व्यायाम समूह ले लिये गये हैं जो उपरोक्त विधान को नहीं अपना सकते अथवा कुछ विशेष स्थूल व्यायाम अपनी आवश्यकतानुसार करना चाहते हैं। इस परिशिष्ट में अशक्तों के लेटे-लेटे या बैठे-बैठे किये जाने वाले आसन भी सम्मिलित हैं। बच्चे, महिलाएँ, वृद्ध, कमजोर रोगी भी इन्हें करते रह सकते हैं ताकि अधिक नहीं तो थोड़ा कुछ करके अंतः को सक्रिय बनाये रखें। खड़े-खड़े दौड़ना (जॉगिंग) इन दिनों पाश्चात्य जगत की एक चिर प्रचलित कसरत है व हृदय रोगियों को विशेष रूप से करायी जाती है। इसकी व तेजगति से टहलने के लाभों की चर्चा भी परिशिष्ट में की गयी है। श्वसन युक्त व्यायाम यों तो सभी हैं पर टहलने की महिमा अपने स्थान पर है ही। जिन्हें समय कम है वे अपना आसन अभ्यासक्रम न्यूनतम समय में कैसे कर लें, इसके लिये 'पुशिंग द इम्मूवेबल' (स्थिर वस्तुओं को धकेलना) जैसे कुछ व्यायाम भी सुझाये गये हैं। मालिश रक्त संचालन बढ़ाने में किस प्रकार सहयोग देती है व पूर्णतः वैज्ञानिक है इसकी चर्चा भी की गयी है। अंत में हर युग

शिल्पी के साथ चलने वाले ब्रह्मदण्ड के कुछ विशिष्ट अभ्यास क्रम बताये गये हैं। प्रज्ञा संस्थानों पर व्यायाम कक्षाओं, युवा संसद गठन के अंतर्गत है। ड्रिल सामूहिक आदि के साथ इसे जोड़ा जा सकता है। इन सब प्रकरणों से पुस्तक को सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। मात्र रोग निवारण ही नहीं, स्वास्थ्य संवर्धन व नियमित स्वाभाविक जीवन क्रम कैसे जीना चाहिये, इसकी क्रमवद्ध शिक्षा को सूत्र रूप में गूँथा भर गया है। विस्तार से तो इन क्रियाओं को लिखकर समझाया नहीं जा सकता। फिर भी प्रयास अवश्य किया गया है कि इस पूरे प्रकरण को पढ़कर विना किसी व्यवधान के कहीं भी इस व्यवस्था को समग्र रूप में चलाया जा सके।

द्वितीय अध्याय

स्वास्थ्य रक्षा के चौबीस स्वर्णिम सूत्र

स्वास्थ्य रक्षा कुछ उँगलियों पर गिने जाने योग्य नियमों पर निर्भर है। समग्र स्वास्थ्य संवर्धन हेतु विटामिनों-टॉनिकों की शरण में जाने के बजाय यदि व्यक्ति अपने आहार, विहार तथा मन संतुलन संबंधी कुछ सूत्रों को जीवन में उतारने को कृतसंकल्प हो जायें तो वर्तमान की व्याधि का निवारण तथा भावी संभावनाओं को टाला जा सकना शक्य है। आसनादि क्रमों को अपनाने के पूर्व यदि इन सूत्रों पर थोड़ा चिन्तन कर लिया जाय तो वह अधिक ठीक होगा। तुरन्त लाभ की आतुरता में कई व्यक्ति आसन-क्रम आरम्भ कर तो देते हैं पर इन नियमों को ध्यान में नहीं रखते। परिणाम यह होता है कि लाभ नहीं मिलता, निराशाहाथ लगती है, इस ऋषि प्रणीत विधा पर से विश्वास हटता है। इस विडम्बना को मिटाने के लिये ही आसन क्रम विधान व उनकी रोग निवारण में उपयोगिता के पूर्व यहाँ सूत्र रूप में २४ निर्देश दिये जा रहे हैं—८ आहार संबन्धी, १० विहार संबंधी, ६ मनः संतुलन सम्बन्धी। पहले इन्हे पढ़ें, आत्मसात् करें, फिर आगे बढ़ें।

आहार—

(१) आरोग्य स्वाभाविक है। उसे प्रकृति की देन समझना चाहिए जो हर प्राणी को सहज उपलब्ध है। दुर्बलता एवं रुग्णता

नस्वाभाविक है। उसे मनुष्य द्वारा प्रकृति व्यवस्था के उल्लंघन का दण्ड समझना चाहिए, जो बुद्धिमान समझे जाने वाले महामूर्ख मनुष्य ने अपने आहार-विहार में व्यतिक्रम करते हुए न्योत बुलाया है। जिन्हें आरोग्य अपेक्षित हो वे प्राकृतिक जीवन जीना आरम्भ करें और उद्धत असंयम का परित्याग करके विद्रोह त्यागें और विवेकयुक्त नीति मर्यादा के साथ समझौता कर लें। इतने भर से भूलों का परिमार्जन हो जायगा और खोये स्वास्थ्य को फिर पा सकने का नया आधार बनेगा। बहुमूल्य आहार एवं औषधियों के सहारे नहीं आरोग्य रक्षा प्रकृति की मर्यादाओं को शिरोधार्य करने—अभ्यस्त हठवादिता छोड़ने से ही हो सकती है।

(२) बिना कड़ी भूख लगे भोजन न करें। ठूँस-ठूँस कर पेट न भरें। आधा आहार के लिए, चौथाई पानी के लिए और चौथाई हवा के लिए स्थान रहने दें। जल्दी-जल्दी न निगलें। ग्रास को मुँह में अच्छी तरह चबाने के बाद ही उदरस्थ करें। दाँतों का काम आँतों को करने के लिए विवश न करें। मुख के स्राव पर्याप्त मात्रा में न मिले तो निगला हुआ भोजन अपच उत्पन्न करेगा।

बार-बार भोजन न करें। प्रौढ़ों के लिए दो बार, वृद्धों के लिए एक बार भोजन करना पर्याप्त है। बच्चे थोड़ा-थोड़ा करके तीन बार भी कर सकते हैं। उन्हें लाड़ चाव वश बड़ों के साथ बैठ कर नहीं खाना चाहिए। उनका भोजन हलका और सुपाच्य होना चाहिए। मात्रा भी विवेक युक्त परिमाण में रखें। बड़ों के साथ खाने से यह सभी मर्यादाएँ टूट जाती हैं। फलतः साथ बिठाकर खिलाने का दुलार हर दृष्टि से अहितकर सिद्ध होता है।

(३) आहार को अधिक पीसने, छानने, तलने, भूनने से उसके स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाते हैं और सारहीन वस्तुएँ पेट पर लदती

हैं। इससे पाचन तन्त्र का श्रम तो बढ़ता है पर पोषण नहीं मिलता।

जहाँ तक संभव हो अनाज, दाल, शाक, फल आदि के छिलके न हटाये जायें। उनमें ही पोषक तत्वों का बाहुल्य रहता है। हरी शाक भाजी, मौसमी फल आहार में अधिक रहें। अन्न अंकुरित कर लेने से उसकी पोषण शक्ति कई गुनी बढ़ जाती है। कड़ी आग पर न पकायें। उबाल कर काम चलायें। भाप से पकाने की पद्धति हर दृष्टि से उपयोगी है। मसाले कम से कम प्रयोग करें। चीनी के स्थान पर गुड़ लें। घी-तेल भारी होता है। उनकी आवश्यकता उन पदार्थों से पूरा करें जिनसे यह चिकनाई निकलती है। मूँगफली, तिली खाकर तेल की और दूध, दही से घी की आवश्यकता पूरी करनी चाहिए।

(४) सप्ताह में एक दिन उपवास करने की आदत डालनी चाहिए। जब सभी कर्मचारियों को नई स्फूर्ति अर्जित करने के लिए साप्ताहिक अवकाश मिलता है तो पेट को छुट्टी क्यों न मिले? शुद्ध उपवास वह है जिसमें जल की कुछ मात्रा बढ़ा कर उसमें नीबू डालकर लिया जाता है। वह न बन पड़े तो दूध, छाछ, रस, जैसे द्रव पदार्थों से काम चलाना चाहिए। वह भी न सधे तो शाकाहार को उपवास माना जा सकता है। पूरे दिन जिन्हें भूखे रहना कठिन हो वे भी एक समय शाम को तो जैसा हल्का भारी उपवास बन पड़े कर ही लें। जिन्हें आवश्यकता प्रतीत हो वे उस दिन एनेमा भी ले सकते हैं। पेट साफ करने का यह अपेक्षाकृत अधिक निरापद तरीका है। पेट भारी होने पर आवश्यकतानुसार दस्त साफ करने के लिए ईसबगोल की भूसी, सनाय चूर्ण, त्रिफला जैसे हल्के विरेचक भी कभी-कभी काम में लाये जा सकते हैं।

(५) खाद्य पदार्थों को सीलन, सड़न वाले स्थानों एवं बदबू वाले पात्रों में नहीं रखना चाहिए। चूहे, घुन, पई आदि कीड़े उन्हें

जहरीला न बनायें इसलिए सभी खाद्य पदार्थ ढंक कर रखने चाहिए। धूल, धुएँ आदि से बचाना चाहिए और समय-समय पर उन्हें धूप में सुखाते रहना चाहिए। पकाने तथा खाने में काम आने वाले सभी बर्तन उपकरण इस प्रकार साफ सुथरे रखने चाहिए जिससे उनमें विषाक्तता उत्पन्न न हो। एक साथ ही बैठकर तो खाया जा सकता है पर जूठा खाने-खिलाने से परहेज ही करना चाहिए। उससे एक की बीमारियाँ दूसरों पर छूत के माध्यम से प्रवेश कर सकती हैं।

नशे सभी हानिकारक हैं। उसमें से किसी का भी व्यसन नहीं अपनाना चाहिए। क्षणिक उत्तेजना के लिए शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को चौपट करने, अकाल मृत्यु मरने, सर्वत्र निंदित होने तथा परिवार को अस्त-व्यस्त करने वाले इस बुराई से हर किसी को बचाना चाहिए। जिन्हें यह लत लगी हो उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(६) सड़े-गले शाक-भाजी, फल, मिठाई आदि को लोभ वश न फेंकना और जैसे तैसे उन्हें खाते-खिलाते रहना बुरी बात है। स्वाद, नाम या मूल्य के आधार पर नहीं, खाद्य पदार्थों की वरिष्ठता उनके सुपाच्य और ताजे होने को दी जानी चाहिए। सड़े अंगूरों की तुलना में ताजे टमाटर हजार गुने अच्छे। आवश्यक नहीं कि कीमती मेवे, फल या टानिकों पर धन पानी की तरह बहाया और पहलवान बनने का सपना देखा जाय। जिनके पास उतना धन नहीं है वे अंकुरित अन्न से भी बादाम जैसा पोषण पा सकते हैं। गाजर में अंडे से भी बढ़कर विटामिन 'ए' है। आँवला, नींबू, केले, अमरूद, बेल जैसे मौसमी फल कीमती 'टानिकों का मुकाबिला करते हैं। घर में शाक वाड़ी लगाकर प्याज, अदरक, पोदीना, धनिया, पालक, मेंथी जैसी वस्तुएँ आसानी से उगाई जा सकती हैं और उनके सहारे पूरे परिवार

को इस शिकायत से बचाया जा सकता है कि उन्हें गरीबी के कारण कुपोषण का शिकार होना पड़ रहा है। पत्तीदार शाकों को आटे में मिलाकर रोटी बनाने में जायका भी है और फायदा भी।

(७) भोजन जहाँ तक हो रसीला लेना चाहिए। कड़ा हो तो उसे इतना चबाना चाहिए कि मुख के स्राव से गीला होकर सरलता-पूर्वक निगलने-योग्य बन जाय। भोजन के साथ कम पानी पिएँ। किन्तु एक घण्टे बाद पानी का सिलसिला जारी रखा जा सकता है। पानी भी आहार की ही तरह एक खुराक है। जल की सफाई का ध्यान रखें। प्यास को दबाएँ नहीं वरन् कुछ अधिक ही पीते रहें इससे गुर्दों की सफाई होती रहती है और पेशाब की बीमारियाँ नहीं पनपने पातीं। प्रातः शौच जाने के पूर्व एक बड़ा गिलास पानी पीने से पेट की सफाई में सुविधा रहती है। जिनके पास सुविधा है वे बीच-बीच में छाछ या रस लेते रह सकते हैं। इस प्रकार द्रव आहार पेट पर वजन भी नहीं डालता और पचता भी जल्दी है।

(८) प्रातः जलपान में दूध, छाछ, रस, रसा जैसे पेय पदार्थ ही लेने चाहिए। भारी नाश्ता सिर्फ उन्हीं को करना चाहिए जिन्हें सवेरे से ही कड़ा शरीर श्रम करना पड़ता है। रात्रि में शारीरिक श्रम न होने से पेट में प्रायः बिना पचा भोजन पड़ा रहता है। उसे हजम होने के लिए मध्याह्न तक का समय मिलना चाहिए। प्रातः भारी नाश्ता न करने की आदत डालनी चाहिए। यदि करना ही हो तो मध्याह्न भोजन न किया जाए। कुछ जलपान ले लिया और सब कुछ पच जाने पर रात्रि को ही भोजन किया जाय। रात्रि को सोने से कम से कम दो घन्टे पूर्व भोजन करना चाहिए और वह भी हलका होना चाहिए। अन्यथा पेट भरा रहने से नींद में विक्षेप उत्पन्न होगा और अपच रहने लगेगा।

विहार—

(९) शारीरिक श्रम हर प्राणी के लिए नितान्त आवश्यक है। इसके बिना सभी कल पुर्जे जकड़ जाते हैं और जंग लग जाती है। आहार पचने और रक्त के दौड़ने में अड़चन पड़ती है। नसें और पेशियाँ पिलपिली रहने लगती हैं। दिमागी काम अधिक और शारीरिक श्रम कम करने वाले आदमी अस्वस्थ रहने लगते हैं। आलस में समय गँवाने वालों की भी यही दुर्गति होती है। श्रम से बचने, ठाली रहने और आलस में समय बिताने वाले मधुमेह, गैस, सिर दर्द, जकड़न, गठिया जैसे अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। उनकी प्रजनन शक्ति भी नहीं रहती। सृष्टि का हर प्राणी आहार खोजने, आश्रय ढूँढने, संकट से बचने के लिए तथा मनो विनोद के लिए भागता दौड़ता रहता है। यही है बलिष्ठता की कुंजी। महिलाएँ हों या निर्धन, शरीर को सुदृढ़ रखने के लिए शारीरिक श्रम का कोई न कोई उपाय अवश्य अपनाना चाहिए।

(१०) किसान-मजूर जैसे श्रम जीवी वर्ग के जो लोग नहीं है, जिन्हें घर-दफ्तर आदि में समय गुजारना पड़ता है उन्हें प्रातः-सायं दो-तीन मील तेज चाल से चलते हुए टहलने का मनोरंजक श्रम करना चाहिए। घर के आस-पास शाक वाड़ी, पुष्प उद्यान लगाने और उसे अपने हाथों सींचने गोड़ने से भी कसरत हो जाती है। यह न बन पड़े अंग संचालन की कसरतें करनी चाहिए और गहरी साँस लेने की आदत डालनी चाहिए। माँसपेशियों की ही तरह फेफड़े मज़बूत रखना भी आवश्यक है। इन कार्यों में आसन प्राणायाम बहुत सहायक होते हैं। उनकी शिक्षा अनाड़ियों से नहीं अनुभवियों से लेनी चाहिए। प्रज्ञा अभियान की शाखाओं में इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था है जिसके सहारे बलिष्ठता उत्पन्न करने वाले सरल प्राणायामों का अभ्यास किया जा सके।

(११) स्वास्थ्य रक्षा के लिए उपयोगी स्तर के आहार, हवादार मकान, संतुलित श्रम एवं हँसती-हँसाती जिन्दगी की सुविधा होनी चाहिए। इनके अभाव में दुर्बलता आ घेरती है और रुग्णता तथा अकाल मृत्यु का शिकार बनना पड़ता है।

अपव्यय की दुर्व्यसनों की सामाजिक कुरीतियों की जैसी अव्यवस्थाएँ अपनाने पर अनावश्यक खर्च बढ़ जाता है। फलतः शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य रक्षा के आवश्यक साधनों में भी कटौती करनी पड़ती है। अभाव को पूरा करने कर्जा चुकाने तथा भविष्य में कठिनाइयाँ बढ़ने की आशंका से मन चिन्तातुर रहता है और स्वास्थ्य की बर्बादी का कारण बनता है। इस विपत्ति से बचने के लिए बजट बना कर चलना चाहिए। आमदनी सीमा में हो खर्च करना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर काम आने के लिए बचत का भी निर्धारण करना चाहिए।

(१२) घर सस्ते साधनों से बने हों या बहुमूल्य—हर हालत में उनमें हवा के आवागमन और धूप प्रवेश की गुंजायश रहनी चाहिए। बन्द घरों में सीलन, सड़न के साथ-साथ बीमारियाँ पलती रहती हैं और उनमें रहने वाले पेड़ की छाया में दिन गुजारने वालों की तुलना में भी घाटे में रहते हैं। घरों को जल्दी-जल्दी चूने से पोतते रहना चाहिए और कीड़े-मकोड़े पनपने न पायें इसका ध्यान रखना चाहिए। मक्खी, मच्छर, खटमल, पिस्सू, मकड़ी आदि के जहरीले प्रवाह घर में रहने वालों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। साथ ही खुले अन्न, जल पर अपना विषैला प्रभाव छोड़कर रोगों के पनपने का निमित्त कारण बनते हैं। इन्हें हटाने के लिए खौलता पानी, मिट्टी का तेल, चूना, फिनायल. नीम के पत्तों का धुआँ आदि कीटनाशकों का भी सावधानी के साथ समय-समय पर उपयोग करते रहना चाहिए। छिपकली को छोड़कर अन्य सभी कीड़े-मकोड़ों को, चूहे-छछूंदरों को

अड्डा नहीं ही जमाने देना चाहिए। कुत्ता- बिल्ली पाले हों तो उन्हें भी ऐसा अवसर न देना चाहिए कि अपनी जहरीली भूठन से गृह-वासियों को रुग्णता का शिकार बना दें।

(१३) झुककर नहीं बैठना चाहिए। बैठते या चलते समय कमर सीधी रखें। गहरी साँस लेने की आदत डालें। इससे स्वच्छ वायु पर्याप्त मात्रा में भीतर प्रवेश करने तथा गन्दी साँस बाहर निकलने में सुविधा होती है। रक्त शुद्धि और फेफड़ों की मजबूती के लिए आवश्यक है कि गहरी साँस लेने की आदत डालें। धीमी और उथली साँस लेने से फेफड़ों का बहुत-सा भाग निष्क्रिय पड़ा रहता है और टी.बी., दमा जैसी फेफड़ों की बीमारियाँ जड़ जमाने लगती हैं। कुछ समय नित्य दौड़ा जाय तो फेफड़े मजबूत होते हैं और दीर्घ जीवन का आधार बनता है। रहने के स्थान के चारों ओर हरियाली रहे तो उपयोगी प्राण वायु मिलने का लाभ मिलता है। वनस्पतियों के क्षेत्र में घर बनायें या फिर घरों में उसके आसपास हरियाली लगायें।

(१४) कपड़े उतने ही पहने जायें जितने लज्जा ढकने तथा अधिक सर्दी-गर्मी के दुष्प्रभाव से बचत के लिए आवश्यक हों। साधारणतया भारी तथा कसे हुए कपड़े न पहनें। इससे रोम कूपों को स्वच्छ वायु मिलने में तथा त्वचा से विषैली भाप निकलने की सहज प्रक्रिया में बाधा पड़ती है। सर्दी-गर्मी सहने का अभ्यास रहने से जीवनी शक्ति सुरक्षित रहती हैं। ऋतु-प्रभाव से सर्वथा बचने वाले, वातानुकूलित भवनों में रहने वाले—सहनशक्ति घट जाने के कारण जल्दी-जल्दी बीमार पड़ते रहते हैं। कपड़े ऐसे न हों जिनमें हवा प्रवेश ही न कर सके। शरीर को छूने वाले कपड़े नित्य धोने और धूप में सुखाने चाहिए ताकि उनमें पसीना न रमने पाये। वस्त्रों की सफाई के अभाव में जुएँ उत्पन्न होते हैं और दाद-खाज जैसे रोग फैलते हैं।

रंगीन कपड़ों की आड़ में मैल छिपाने और धोने में आलस की गुंजा-यश नहीं निकालनी चाहिए।

(१५) शरीर के प्रत्येक अवयव की सफाई रखें। विशेषतया मुख, नाक, कान, आँख, जननेन्द्रिय, मलद्वार, त्वचा, रोमकूप आदि की सफाई के तरीके अवश्य सीखें और अपनायें। अत्यधिक सर्दी, दुर्बलता या बीमारी न हो तो स्नान नित्य करें। शरीर को अच्छी तरह खुरदरे तौलिये से रगड़ें ताकि मैल किसी भी अवयव में जमने न पाये और स्नान का वास्तविक उद्देश्य पूरा होता रहे। भोजन के बाद कुल्ला करें और अन्न के कण दाँतों, मसूड़ों में जमा न होने दें। अन्न, जल, साँस के सभी जीवनाधारों में स्वच्छता का परिपूर्ण समावेश रखें। मूत्रालय, शौचालय, स्नानघर, रसोईघर की नाली, पानी रखने का स्थान आदि की सफाई का पूरा ध्यान रखें क्योंकि रोग कीटाणु ऐसे ही स्थानों पर पनपते हैं और अवसर मिलते ही आक्रमण करते और स्वास्थ्य संकट खड़ा करते हैं।

(१६) जल्दी सोयें, जल्दी उठें। देर तक जागने और दिन चढ़े तक सोते रहने वाले आलसी, मंदमति और दरिद्र बनते जाते हैं। रात्रि को चिन्ता मुक्त होकर हँसते-हँसाते वातावरण में सोना चाहिए। शेष भय और उद्वेग भरी मनःस्थिति में गहरी नींद नहीं आती। नींद का पूरा होना भोजन कम मिलने से भी बुरा है।

मुँह ढक कर न सोयें। ताजी हवा में साँस लें। बंद कमरे में अंगीठी न जलायें। कोलाहल से रहित स्थान सोने के लिए ढूंढ़ें। एक चारपाई पर दो के सोने से नींद में व्यवधान पड़ता है। अपरिहार्य कठिनाई न हो तो इस खिचपिच से बचना ही चाहिए। ठूंस कर पेट भर लेने पर भी नींद में विक्षेप पड़ता है। काम से थक जाने पर थोड़ी देर शरीर को पूर्ण ढीला करने वाली शिथिलीकरण क्रिया कर लेने से भी नींद जैसी राहत मिलती है।

(१७) इन्द्रियों में जो शक्ति है वह उपयोगी प्रयोजनों में लगाकर मूल्यवान सफलताएँ प्राप्त करने के लिए है। इनका अपव्यय नहीं करना चाहिए। इन्द्रिय-निग्रह को बलिष्ठता और दीर्घायुष्य का स्रोत माना गया है। छलनी में दुहने पर दुधारू गाय भी घाटे की सिद्ध होती है। काया के संबंध में भी यही बात है। इन्द्रियशक्ति का दुरुपयोग किया जाय तो बहुमूल्य सामर्थ्य से हाथ धोना और छूँछ होकर दुर्बलता ग्रस्त बनना पड़ेगा। कामुकता का चिंतन मस्तिष्क को बेतरह चंचल बनाता है और उसे इस योग्य नहीं रहने देता कि किसी महत्वपूर्ण लक्ष्य पर एकाग्र होकर कहने लायक सफलता प्राप्त कर सके। यौनाचार की मर्यादा पशुपक्षी समझते हैं किन्तु मनुष्य इस सम्बन्ध में अति बरतता है और अनेकानेक गुप्त प्रकट जननेन्द्रिय रोगों से ग्रसित रहता है। ऐसे व्यक्तियों की मेधा और जीवनी शक्ति का निरन्तर ह्रास होता है और जवानी में बूढ़े बन जाते हैं। जीभ का असंयम चटोरपन की लत लगाता है और पेट को अपच का शिकार बनाकर रक्त को विषैला करता और चित्र विचित्र रोगों को जन्म देता है। यही बात अन्य इन्द्रियों के दुरुपयोग के संबंध में भी कही जा सकती है।

(१८) स्वास्थ्य खराब करने में अति यौनाचार और बहुप्रजनन का सबसे बड़ा कारण है। विशेषतया महिलाओं के लिए तो यह प्रत्यक्ष विपत्ति है। उन्हीं के रक्त, मांस, अस्थि से बालक का शरीर बनता है। प्रजनन के दिनों ढेरों रक्त स्राव और अत्यधिक कष्ट होता है। बच्चों को दूध पिलाना पड़ता है। इसकी क्षति पूर्ति करने वाली सुविधा सामग्री न मिले तो बेचारी बेमौत मरती है। पेट की, पेड़ू की, पेशाब की अनेकों बीमारियाँ उन्हें प्रजनन का दबाव बर्दाश्त न करने के कारण ही होती है। जिन पतियों में दया-धर्म हो और जो प्रेम शब्द का अर्थ समझते हों वे पत्नियों को बहुत बच्चे पैदा करने के लिए विवश न करें। बहु प्रजनन से परिवार की अर्थ व्यवस्था बिगड़ती है। अति-

भावकों पर अनावश्यक व्ययभार लदता है। अभावग्रस्त बच्चों का भविष्य बिगड़ता है। और देश को दरिद्रता, अस्त-व्यस्तता का संकट सहना पड़ता है। अस्तु, हर विवेकशील का कर्त्तव्य है कि इन दिनों की विषम परिस्थितियों को देखते हुए संतानोत्पादन से जितना बच सकें अवश्य ही बचें।

मानसिक संतुलन

(१९) घर में किसी के बीमार पड़ने पर हड़बड़ाना नहीं चाहिए। बीमारियाँ शरीर में घुसे हुए विकारों को निकाल बाहर करने के लिए उभरती हैं। इसलिए वे आमतौर से शत्रु नहीं मित्र होती हैं। प्रकृति के इस संशोधन कार्य में बुद्धिमत्तापूर्ण सहायता कर दी जाय तो बीमारी जल्दी ही अच्छी होती है और उन दिनों जो दुर्बलता बढ़ी थी उसकी जल्दी ही भरपाई भी हो जाती है। बीमार का मनोबल बढ़ाए रखा जाय, प्रसन्न एवं आशान्वित रखने वाला किया जाय। उन दिनों विश्राम, उपवास, एनेमा, अधिक जल पीना जैसे सामान्य उपचार भी बहुत काम दे जाते हैं। रोग हर छिद्र से बाहर निकलता है इसलिए उन दिनों सफाई पर अधिक ध्यान देना चाहिए। उचित परिचर्या को अच्छी खासी चिकित्सा समझा जा सकता है। विषैली या निरोधक दवाएँ सीमित मात्रा में तभी लेनी चाहिए जब वैसा करना अपरिहार्य हो जाय। साधारणतया जड़ी-बूटी उपचार से ही साधारण रोगों की चिकित्सा हो जाती है और उसे कोई भी समझदार व्यक्ति आसानी से सीख सकता है।

(२०) हृदय शरीर को गर्मी एवं शक्ति प्रदान करने वाला 'बायलर' है। मस्तिष्क चेतना को सक्षम बनाने वाला बिजलीघर। समूचे शरीर में यही दो प्रधान शक्ति भण्डार हैं। अन्य अवयव उन्हीं के सही रहने पर अपनी क्षमता बनाये रखते हैं। मनोविकारों को ऐसी तेजाब कहा जा सकता है जो इन दोनों को ही धीरे-धीरे गलाता।

जलाता रहता है और जीवित को मृतक जैसी स्थिति में धकेल देता है। अस्तु, मनोविकारों को सर्प, विच्छू, घुन, दीमक की तरह हानि-कारक मानना और उनसे वचने का छूटने का सतर्कतापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। चिन्ता, भय, आशंका, संकोच, सनक, उतावली, आवेश, असंतुलन, द्वेष, लालच, अहंकार जैसे अनेकों मनोविकार हैं जो शालीनता का वातावरण और औचित्य अपनाने का साहस न होने के कारण उत्पन्न होते और अभ्यास के सहारे आदत वनते जाते हैं। ऐसे व्यक्ति रुष्ट, असंतुष्ट रहते और भ्रष्ट-दुष्ट आचरण करते रहते हैं। ऐसी ही मनोदशा नर्क कहलाती है। इसकी प्रतिक्रिया आये दिन उत्पन्न होने वाली विपत्तियाँ बनकर सामने खड़ी रहती है। हर व्यक्ति को मन हलका रखना चाहिए। हँसत-हँसाती, हलकी-फुलकी मनोदशा रखनी चाहिए। जो ऐसा कर पाते हैं वे नीरोग रहते और और बहुत दिन जीते हैं।

(२१) मिलनसार, हँसमुख, दूसरों के कामों में हाथ बँटाने वाले, सेवा और सहयोग का स्वभाव वना लेने वाले सभी को प्यारे लगते हैं। उन्हें मित्र प्रशंसक ओर सहायकों की कमी नहीं पड़ती। जन सहयोग प्रसन्नता औरसफलता का प्रमुख आधार है। इसे अर्जित करने के लिए उदार प्रकृति का वनना पड़ता है। संकीर्ण स्वार्थपरता में डूबे रहने वाले व्यक्ति न किसी के काम आते हैं और न वदले में दूसरों का स्नेह सहयोग पाते हैं। कृपण, अहंकारी और अपना ही मतलव सोचने वाले सभी की दृष्टि में क्षुद्र और तिरस्कृत बने रहते हैं। भले ही चापलूस लोग किसी प्रकार उनका अहंकार सहलाते प्रकारान्तर से अपना उल्लू सीधा करते रहें। ऐसे लोग सदा शारी-रिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से गये गुजरे ही बने रहते हैं। जिसका अन्तराल असंतुष्ट है उसे प्रसन्न मनः स्थिति, उत्तम परिस्थिति और सुस्थिर तन्दुरुस्ती का लाभ मिल ही नहीं सकता।

(२२) जो उपलब्ध है उससे प्रसन्न रहना और भविष्य के लिए अच्छी आशा एवं साहस भरी चेष्टा करना यही सुखी सन्तुष्ट रहने और सफल बनने का आधार भूत सिद्धान्त है। जो अभावों को, शत्रुओं को गिनते और भयावह आशंकायें सोचते रहते हैं उन्हें चित्त की विकृति ही गलाती- जलाती रहती है। अपने से छोटों को देखकर भाग्य को सराहना और बड़ों से योग्यता एवं श्रमशीलता में बाजी मारने की योजना बनाना, यही है सोचने का सही तरीका। प्रतिशोध के बिना प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ने का अच्छा तरीका है। जिनका मन सन्तुलित और चित्त प्रसन्न रहता है उनका आरोग्य कभी नष्ट नहीं होता। संयोगवश रुग्णता में फँसना पड़े तो भी वे उस स्थिति में देर तक पड़े नहीं रहते।

(२३) प्रतिकूलताएँ हर मनुष्य के जीवन में आती हैं। इच्छित परिस्थिति किसी को भी प्राप्त नहीं होती। कुछ न कुछ अभाव और असन्तोष हर किसी को बना रहता है। व्यवधान और अवरोध से रहित जीवन आज तक किसी ने भी नहीं जिया। कठिनाइयों के साथ जूझते, प्रतिकूलताओं के साथ तालमेल बिठाते और जो अपरिहार्य है उसे धैर्य, साहस पूर्वक सहने से ही काम चलता है। अधिक अच्छी स्थिति प्राप्त करने में प्रयत्नरत रह कर अपना पौरुष और गौरव बढ़ाना चाहिए। इतने पर भी यह आशा नहीं करनी चाहिए कि सभी इच्छित सफलताएँ मिलकर ही रहेंगी या मिलना ही चाहिए। ऐसे अति महत्वाकांक्षी प्रायः खिन्न-उद्विग्न पाये जाते हैं और जो उपलब्ध है उसका आनन्द न ले सकने के कारण मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ ही बने रहते हैं। जिसने मानसिक आरोग्य खोया वह शरीर से भी नीरोग न रह सकेगा।

(२४) बेईमानी, चोरी, ठगी, मुफ्तखोरी, काम-चोरी आदि

के माध्यम से कमाया हुआ अनीति उपार्जित धन खाने से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक क्षेत्रों में अनेकानेक प्रकार के रोग उठ खड़े होते हैं। मन में कपट, क्रोध, द्वेष, हिंसा, प्रतिशोध के भाव भरे रहने वाले अपनी ही आन्तरिक जलन के कारण जीवनीशक्ति का ह्रास करते रहते हैं और हलका विष पीते रहते वालों की तरह अपने हाथों ही आरोग्य वृक्ष की जड़ पर कुल्हाड़ी चलाते रहते हैं। भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट चरित्र वाले, अपराधी दुष्प्रवृत्तियों में लिप्त रहने वाले मानसिक स्वास्थ्य संतुलन गँवाने के साथ व्यक्तित्व की विशेषताएँ ही नहीं गँवाते वरन् भूत-पिशाचों जैसी इस प्रकार की दयनीय स्थिति में रहते हैं जिन्हें अस्पताल में भर्ती लोगों से भी अधिक गया-गुजारा कहा जा सके।

●●

तृतीय अध्याय

रोग क्यों व कैसे होते हैं ? कैसे उनसे बचा जाय ?

शरीर की मूल प्रकृति वीमार होने की नहीं है। सृष्टि के असंख्य प्राणियों को अपने-अपने ढंग के शरीर मिले हैं वे निर्धारित आयु तक विना किसी व्यथा वीमारी के जीवित रहते हैं। मृत्यु, दुर्घटना आदि तो अपने हाथ की वात नहीं; पर बीमारी का उत्पादन अपना निजी है, उसे अपनी रीति-नीति वदलकर आसानी से रोका जा सकता है। स्वास्थ्य सुरक्षा की सर्वविदित नीति यह है कि प्रकृति के अनुरूप अपना आहार-विहार, रहन-सहन वनाये रखा जाय जैसा कि सृष्टि के सभी प्राणी वनाये रखते और चैन से जीते हैं। इन्द्रियों का संयम वरता जाय, दिनचर्या ठीक रखी जाय, श्रम और आराम का सन्तुलन रहे, मस्तिष्क को उत्तेजनाओं से वचाये रखा जाय, स्वच्छता का ध्यान बना रहे तो इन मोटे नियमों का पालन भर करने से रोगों से वहुत हद तक छुटकारा मिल सकता है। स्व उपार्जित बीमारियों का ही वाहुल्य रहता है—वाहर से तो वहुत कम आती हैं। मौसम का प्रभाव, वंशगत विकार, छूत, दुर्घटना आदि कारणों से भी अप्रत्याशित रोग हो सकते हैं, पर उनका अनुपात वहुत स्वल्प रहता है। उन्हें अपवाद भर समझा जा सकता है। मूल उत्पत्ति तो अपनी ही उच्छृंख-

लता से होती है। अव्यवस्थित और विकृत आदतों का शिकार होकर ही मनुष्य बीमार पड़ता है । आमतौर से औषधि उपचार ही रोग निवारण के लिये प्रयुक्त होता है; पर ध्यान रखने योग्य बात यह है कि उसमें लाभ की मात्रा से कम हानि की मात्रा नहीं है।

रोग का होना यह प्रकट करता है कि शरीर में विजातीय द्रव्य भर गया है और उसके विरुद्ध जीवनी शक्ति ने खुली लड़ाई आरम्भ कर दी है; साथ ही यह भी जानकारी मिलती है कि आहार-विहार में घुस पड़ी विकृतियाँ शरीर के ढाँचे की तोड़-फोड़ कर रही हैं। इस स्थिति के निराकरण के ऐसे सौम्य उपाय होने चाहिए जिससे जीवनी शक्ति बढ़े और विषाणुओं को मिलने वाला परिपोषण बन्द हो जाय। इसके लिए संचित मल के निष्कासन एवं अवयवों को विश्राम देने वाले उपाय अपनाये जाने चाहिए। उस ओर उपेक्षा रखी जाय और रोग के ऊपरी लक्षण कष्ट को दबाया जाय तो इससे कुछ स्थायी समाधान न निकलेगा। बाढ़ का पानी मेंढ़ के एक रास्ते न सही दूसरे रास्ते वह निकलेगा। एक बीमारी अच्छी होते दूसरी अन्य व्याधियाँ उठ खड़ी होती हैं इससे प्रकट होता है कि मात्र ऊपर से ही लीपा-पोती हुई है, विभीषिका का अस्तित्व अपने स्थान पर यथावत मौजूद है।

मूल तथ्य यह समझा जाना चाहिए कि जीवनी शक्ति का आधार है शरीर का पूरी तरह स्वस्थ बने रहना व उसके सभी अंगों का अपना-अपना कार्य सही ढंग से करते रहना। ऐसा न हो, शरीर आराम तलब होता चला जाये तो जीवन संग्राम में लड़ने योग्य सामर्थ्य वह खो बैठता है, छोटे-छोटे हिचकोले उसे झकझोर देते हैं। जन्म काल से ही बालक को प्रौढ़ावस्था तक पहुँचने तक अनेकानेक अवांछनीय परिस्थितियों का सामना करना होता है। अंदर संचित जीवनी शक्ति वातावरण व मौसम के परिवर्तन, जीवाणु-विषाणुओं के हमलों तथा अन्य प्रतिकूलताओं से जूझ सकने योग्य सामर्थ्य उसे देती है। इस

जीवनी शक्ति का संचय सक्रिय बने रहकर ही संभव है। अकर्मण्यता तो इस प्रकार है जैसे हाथ पैर सही सलामत होने पर भी चलने के लिये मना कर देना। जैसे लोहे को जंग व लकड़ी को घुन खा जाते हैं, उसी प्रकार निष्क्रियता मानवी सामर्थ्य को नष्ट कर देती है, विजातीय द्रव्यों-मलों के संचय का द्वार खोल देती है। रोग का आक्रमण अप्रत्यक्ष रूपसे हो चुका होता है जो समय आने पर गंभीर रूप में फलित होता है। प्राकृतिक उपकरणों से स्वयं को वंचित कर मनुष्य किस प्रकार आत्म हन्ता बनता व सतत रोगी होता रहता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण दैनन्दिन जीवन में रोगियों की भीड़ अस्पतालों में-घरों में देख कर अनुमान लगाया जा सकता है।

तथ्य यह भी अपने स्थान पर सही है कि गत सौ दो सौ वर्षों के भीतर संसार में जो नये-नये आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन हुए हैं उनको देखते हुए अब प्रत्येक मनुष्य के लिए खेतों और खुले स्थानों में पर्याप्त शारीरिक श्रम करके, जीविकोपार्जन करना सम्भव नहीं रह गया है। अब बहुसंख्यक व्यक्तियों के लिए कल-कारखानों और दफ्तरों में काम करना एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। इतना ही नहीं आज "उत्तम खेती" वाला प्राचीन सिद्धान्त व्यवसाय में गलत माना जाने लगा है और दफ्तरों में कुर्सी पर बैठ कर काम करने वाले बाबुओं या मशीन पर थोड़े परिश्रम से अधिक काम कर सकने वाले कारीगरों को समाज में किसानों की अपेक्षा अधिक ऊँचा माना जाता है और सुख-सुविधा भी उन्हें अधिक प्राप्त होती है। ऐसी दशा में गाँवों के रहने वाले भी, जिनके बाप-दादे सैकड़ों वर्षों से खेती अथवा अन्य ग्रामीण उद्योग-धंधों से निर्वाह करते हुए स्वस्थ जीवन विताते रहते थे, इस समय बराबर यह चेष्टा करते हैं कि किसी प्रकार कोई नौकरी प्राप्त करके शहरी जीवन व्यतीत करने का मौका पा सकें।

वर्तमान समय में संसार में अधिकतर यही दशा देखने में आती है कि जिन लोगों को अपनी विद्या और बुद्धि के प्रभाव से अथवा उच्च सामाजिक स्थिति के कारण विशेष सुख-सुविधाएं मिल गई हैं वे लापरवाही या प्रमाद के कारण स्वास्थ्य की दृष्टि से हीन अवस्था में हैं वे साधनों के अभाव से, विपरीत परिस्थितियों में रहकर जीवन-निर्वाह करने को विवश होने से रोगी और अल्पायु हो जाते हैं। यदि ऐसे लोग आरम्भ से ही अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें और आरम्भिक दोषों के कारण अथवा जीवन-निर्वाह के लिए किसी भी कारण से उत्पन्न होने वाली त्रुटियां या कमजोरी का उसी समय उपाय करते रहें, तो कोई कारण नहीं कि वे सामान्य अवस्था में रहते हुए भी सुखी जीवन न विता सकें और तरह-तरह की बीमारियों और शारीरिक कष्टों से बचे हुए न रह सकें।

मनुष्य की मानसिक अवस्था का भी स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि यह विषय जल-वायु के प्रभाव की अपेक्षा भी सूक्ष्म है, इसलिये थोड़े हा लोग इसके महत्व को समझ पाते हैं, पर इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जिन लोगों का मन अशान्त तथा विकार युक्त अवस्था में रहेगा वे कभी वास्तविक स्वस्थ-जीवन का सुख प्राप्त नहीं कर सकते। आजकल लोगों का जीवन जैसा वासनामय हो गया है और पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता, ईर्ष्या, द्वेष आदि के कारण जो क्रोध-लोभ, शत्रुता वैर, छल-कपट के भाव मन में उठते रहते हैं उनके कारण मनुष्य की मानसिक शान्ति प्रायः नष्ट हो जाती है और उसके भीतर सदा दूषित विचारों की आँधी उठा करती है। इन हानिकारक विचारों का प्रभाव हमारे भीतरी अंगों पर भी पड़ता है, हमारे स्नायु तनाव की स्थिति में रहते हैं और इससे पाचन-संस्थान, श्वांस-संस्थान, प्रजनन-संस्थान के कार्यों में विकृति उत्पन्न हो जाती है।

अन्दरूनी तनाव चाहे वह स्थूल कारणों से हो अथवा सूक्ष्म, रोग के रूप में फूट निकलता है।

इन सभी को दृष्टिगत रख आसन व्यायाम के क्रम को समय की आवश्यकतानुसार अब हर नागरिक के लिए अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। व्यायाम की नियमितता, भले ही वह कुछ मिनटों के लिए नित्य ही क्यों न हो कभी भी अंगों को निष्क्रिय नहीं होने देती, व्यक्ति को सदैव चुस्त व प्रफुल्लित बनाये रखती है। व्यायाम अर्थात् दण्ड-बैठक या कुश्ती नहीं, अपितु शरीर को संतुलित साम्य अवस्था में बनाये रखने वाली आसन-प्राणायाम की व्यवस्था जो न तो अधिक दबाव डालती है न ही तनाव आने देती है। इन सूक्ष्म व्यायामों के क्रिया पक्ष को समझने से पूर्व एक दृष्टि शरीर के मुख्य संस्थानों व स्वास्थ्य के मूल आधार अंगों पर डालनी होगी।

स्नायु संस्थान, रक्तपरिवहन तंत्र, श्वांस संस्थान एवं पाचन संस्थान इन चार को हम शरीर के अंदरूनी प्रमुख चार तन्त्रों में से मान सकते हैं। मस्तिष्क से लेकर स्नायु तन्तु तक फैला हुआ स्नायु संस्थान न केवल चिन्तन से संबंधित है, वरन् मांस पेशियों व अन्यान्य अवयवों के आकुन्चन-प्रकुन्चन-गतिविधियों के लिये भी उत्तरदायी है। संवेदन तन्तु जो सन्देश मस्तिष्क तक ले जाते हैं उसका मस्तिष्क तुरन्त उत्तर भेजता है। व बदले में माँसपेशियाँ सिकुड़ती हैं अथवा वांछित स्थान से एन्जाइम्स, न्यूरो-ह्यूमोरल रसों का स्राव होने लगता है। सारे शरीर को अनैच्छिक स्नायु तंत्र अपने ही स्तर पर स्वचालित रूप से चलाता रहता है। हारमोन्स जो सीधे रक्त में घुल-कर अंग विशेषों तक जा पहुँचते हैं, उसके मूल में इनकी क्रिया ही उत्तरदायी होती है।

व्यायाम क्रम में जब भी अंगों को हिलाया डुलाया जाता है तो उनका क्रम इस प्रकार व्यवस्थित होता है कि सभी अनिवार्य

स्नायु उस स्थान विशेष में सक्रिय हो जाते हैं, उनकी संवेदना ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है व तन्तु समापन विन्दुओं पर से रस स्रावों की मात्रा बढ़ जाती है। मांस पेशी कितनी सवल हुई यह नहीं, वरन् उस स्थान के अंदरूनी अंगों में कितनी सक्रियता आई, इसे ही आसन रूपी सूक्ष्म व्यायामों का मूल आधार माना जाता है।

रक्त सभी जीवकोषों तक पहुँचकर चयापचय क्रिया में भाग लेने वाले घटकों को उन्हें प्रदान करता व विकार द्रव्यों को वहाँ से लेकर मूत्र, श्वांस व हसीने के माध्यम से वाहर निकाल देता है। रक्त का प्रवाही-गतिशील होना ही अंग विशेष के तथा व्यक्ति के जीवित होने का चिन्ह है। किसी भी स्थान विशेष की निष्क्रियता वहाँ रक्तावरोध उत्पन्न करती तथा मल संचय का कारण वनती है। हृदय की गति बढ़ना व सारे शरीर में रक्त का दौड़ जाना कोई विशेष वात नहीं। यह तो कसरत, तेज दौड़, तैरने अथवा तेजी से किये गये सूक्ष्म व्यायामों से भी सम्भव है। परन्तु यह वांछनीय नहीं है। रक्त-प्रवाह उतना ही स्वाभाविक व सर्वव्यापी (यूनिफॉर्म) होना चाहिए। मात्र त्वचा का लाल हो जाना, पसीना आने लगना व साँस फूल जाना तो यह बताता है कि हृदय उतने ही रक्त को (५ लीटर) अव कम समय में अधिक ताकतवर पम्पिग क्षमता के साथ फेंक रहा है। ऐसे में त्वचा की केशिकाएँ (केपीलरीज) तो खुल जाती हैं पर अन्य अंगों की केशिकाएँ उतनी तेजी से नहीं खुल पातीं। सौम्य विधि यही है कि हर जोड़, हड्डी, पाचन संस्थान के अंग, श्वसन केशिकाएँ व वायु-कोश, अंतःस्रावी ग्रंथियाँ प्रचुर मात्रा में प्राण वायु पायें व उनकी कार्य क्षमता वढ़े। चौवीस घण्टों में एक वार भी यह धक्का लग जाने पर रुके पड़े अवरोध निकल जाते हैं व विकार द्रव्यों को एकत्र होने का अवसर नहीं मिल पाता।

श्वसन संस्थान पाचन प्रक्रिया के वाद अवशोषित अम्ल-यौगिकों के जलने से वनी कार्वन डाइ आक्साइड को कार्वोनिक अम्ल के रूप में रक्त से पाता है व उसे वायु रूप देकर प्रत्येक श्वास के साथ अन्दर प्रविष्ट हुई प्राण वायु 'ऑक्सीजन' से एक्सचेंज' कर प्रश्वांस के साथ वाहर फेंक देता है। यह कार्य अपने आप में वहुत वड़ा है। मूत्र-मल मार्ग तथा त्वचा मार्ग से सीमित मात्रा में ही विजातीय द्रव्य निष्कासित होते हैं रक्त में विद्यमान कार्वनिक व अकार्वनिक यौगिक टूटकर जो अम्ल बनाते हैं उसका शरीर के किसी भी अंग-जीवकोप में संचय हानिकारक सिद्ध हो सकता है। हर मिनट में औसतन व्यक्ति १५ से लेकर बीस वार तक साँस लेता है। हर साँस के साथ ऑक्सीजन के अणु अन्दर प्रवेश करते हैं एवं कार्वन डाइ आक्साइड वाहर चले जाते हैं। सांस जितनी उथली होगी उतने ही कम वायु कोष खुलेंगे और रक्त की अशुद्धि उतनी ही अधिक मात्रा में वढ़ती जायेगी। गहरी व सही तरीके से ली गयी साँस हर वायु कोष को खोलती व केशिका वायुकोष के मध्य स्थित झिल्ली को सक्रिय बनाती है। सामान्यतया सांस लेने के पीछे स्नायु संस्थान को ही उत्तरदायी माना जाता है परन्तु रक्त में विद्यमान ओषजन का स्तर, छाती के चारों ओर की मांसपेशियों की सक्रियता तथा पेट व छाती के बीच की डायफ्राम रूपी वृहद मांस पेशी का उठना व गिरना वहुत कुछ श्वसन की गहराई के लिए उत्तरदायी है। सूक्ष्म व्यायामों में इन्हीं वारीकियों पर जोर दिया जाता है। रीढ़ की हड्डी से जुड़े मसल्स व पसलियों का खिचाव, गर्दन की मांसपेशियों के कारण श्वांसनली का पूरी तरह खुल जाना यह सुनिश्चित कर देता है कि हर श्वांस के साथ, भले ही वह तेंजी से न ली गयी हो प्राण वायु की प्रचुर मात्रा अन्दर जायेगी व शुद्ध रक्त हृदय में व वहाँ से सारे शरीर के जीवकोषों को मिलेगा।

पाचन संस्थान सारे संस्थानों से जुड़ा व सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। पेट व पेड़ू में पाचन संस्थान व इसके सहयोगी अंगों के अतिरिक्त जननेन्द्रियों के अन्दरूनी भाग व मूत्र छानने वाले गुर्दे भी होते हैं। इन सबकी सक्रियता पर रक्त शुद्धि निर्भर है। जितने ये निष्क्रिय होंगे उतने ही विजातीय द्रव्य, अधिक संख्या व मात्रा में उत्पन्न होते व रक्त में एकत्र होते चले जायेंगे। मुँह—आमाशय से लेकर बड़ी आँत तक भोजन की विखण्डन-पाचन-परिपाक-अवशोषण व विसर्जन प्रक्रिया इस क्रम से होती है व इस कार्य के लिए सही समय पर सही स्थान तक भोज्य पदार्थ को पहुँचाने के लिए ऊपरी व निचले दोनों ही पाचन संस्थानों में एक प्रक्रिया होती है जिसे पेरिस्टेल्सिस कहते हैं। जिस प्रकार स्वचालित ढंग से किसी कारखाने में सामान तैयार होता व पैक होकर तैयार होता निकलता चला जाता है, उसी प्रकार मुँह से भूख लगने पर ग्रहण किया गया आहार रसस्रावों से मिलता-घुलता, अवशोषित होता व अवशिष्ट पदार्थ बड़ी आँत से गुजरता हुआ मलद्वार से बाहर निकल जाता है।

सूक्ष्म व्यायाम क्रियाएँ इस नाजुक संस्थान पर इस प्रकार प्रभाव डालती हैं कि पाचन प्रक्रिया सहज रूप में होती चली जाय। भोजन का अपच, बदहजमी, कब्ज ही अधिकांश रोगों का कारण है। पर यह कैसे होता है, इसे बहुत कम ही जानते हैं। आदतों में प्रविष्ट निष्क्रियता आँतों को भी धीरे धीरे निष्क्रिय बनाकर मल को बाहर जाने से रोकती व कब्ज को जन्म देती है। इसके लिये आंतों को प्रशिक्षित करना होता है व उन्हें नये सिरे से ढालना होता है। पेट व पेड़ू के व्यायाम यही क्रिया करते-आँतों की मालिश कर उन्हें सही समय पर आकुंचित-प्रकुंचित होने को विवश करते हैं। पर इसके लिये ढालना स्वयं को भी पड़ता है। पेट ठीक न हो-कब्ज बना हुआ हो तो आँतों को आराम देकर फिर यह प्रक्रिया आरम्भ की जाती है।

ऐसा न किया जाय तो लाभ तो दूर, हानि ही होती है। पाचन के लिये उत्तरदायी एन्जाइम्स जिन ग्रन्थियों-उपत्यिकाओं से स्रवित होते हैं उन पर हल्का दबाव इन क्रियाओं से पड़ता है पर वह ठीक निशाने पर ही पड़ता है। अपनी इस विशेषता के कारण ही रोग निवारण में आसनों का महत्वपूर्ण योगदान माना गया है। छलनी रूपी गुर्दों से मूत्र बनने की प्रक्रिया भी इनसे बढ़ती है व अवांछनीय पदार्थ बाहर निकाल दिये जाते हैं।

इस प्रकार रोगों का मूल कारण व निदान जानकर तदनुसार आसनों द्वारा उनकी चिकित्सा का निर्धारण किया जा सकता है व स्वस्थ होने पर उन्हें नियमित रूप से करते रहकर सदैव रोगों से बचा रहा जा सकता है। इतना भर करते रहना अपनी जीवनी शक्ति को नित्य एक थपकी दे देने के समान है। ऐसा कोई भी व्यक्ति न होगा जो यह चाहे कि उसे नीरोग नहीं अस्वस्थ ही बने रहना है। आज के व्यस्त जीवन क्रम में भी इतना समय निकाला जा सकता है कि अन्दरूनी अंगों की नित्य मालिश संभव हो सके, सूक्ष्म ग्रन्थियों के रस स्राव में वृद्धि तथा विजातीय द्रव्यों के निष्कासन की गति में बढ़ोत्तरी की जा सके। ऋषियों द्वारा आविष्कृत यह विद्या अपने आप में विलक्षण व पूर्णतः वैज्ञानिक है। आवश्यकता उसे महत्ता देने की है, नियमितता तो अनिवार्य है ही।

चतुर्थ अध्याय

आसन-व्यायामों के विभिन्न प्रचलित स्वरूप एवं पूर्व नियम

व्यायाम-पद्धति पर वैज्ञानिक दृष्टि कोण से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर पर अधिक दबाव डालने वाले या बहुत अधिक थका देने वाले भारी व्यायाम पहलवानों या फौजी आदमियों के लिए भले ही उपयुक्त हों पर जो साधारण व्यक्ति अपना व्यापार, नौकरी या मजदूरी जैसे नित्य नैमित्तिक कार्य करते हुए स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से चौथाई या आधा घण्टा ही इस कार्य में लगा सकने की स्थिति में है, उनके लिए सर्वथा भिन्न प्रकार के ऐसे हलके व्यायामों की आवश्यकता है जिससे शरीर के विभिन्न कार्य यथा नियम संचालित होते रहें। इस दृष्टि से विचार करने पर शरीर तत्व-विशारदों ने विशेष रूप से उपयोगी पाया है। यद्यपि प्राचीन काल में इनका आविष्कार आत्मिक-उन्नति के लिए शरीर को स्वस्थ और नीरोग दशा में बनाये रखने की दृष्टि से ही किया गया था और इस लिये अभी तक अनेक अनजान लोग इन्हें 'साधू और जोगियों' के मतलब की चीज ही समझते हैं, पर उनकी ऐसी मान्यता एक भ्रम ही है। स्वास्थ्य-विद्या विशारदों ने इन क्रियाओं को शारीरिक अंगों को ठीक दशा में रखने के लिए बहुत लाभदायक पाया है और उनमें से बहुत-सी क्रियाओं को कुछ परिवर्तन करके सर्व साधारण के लिए उपयोगी बना

दिया है। आजकल इन यौगिक व्यायामों का अभ्यास कितने ही साधारण मनुष्य व्यक्तिगत रूप से ही नहीं वरन् बहुसंख्यक स्कूलों में विद्यार्थियों को उनका सामूहिक रूप से अभ्यास कराया जाता है। भारत के अतिरिक्त विदेशों के विद्वानों का भी ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ है। योरोप, अमरीका के विद्यालयों में भी विभिन्न शारीरिक अंगों तथा श्वाँस-यंत्र की क्रियाओं के सुधार के लिए इनका अभ्यास कराया जाता है।

इन यौगिक व्यायामों का विशेष महत्व इस कारण से है कि उनका आधार कृत्रिम नहीं है वरन् प्राचीन काल के मनीषियों ने उनका आविष्कार प्रकृति का निरीक्षण करके ही किया है। योग-ग्रन्थों में कहा गया है कि "जीव जगत में जितनी योनियाँ (श्रेणियाँ) हैं उतनी ही संख्या आसनों की है।" इनका आविष्कार करने वाले ऋषि मुनि सब प्रकार के जीव, जन्तु, वनस्पति, आदि के कार्य कलापों का निरीक्षण अपनी सूक्ष्म दृष्टि से करते रहते थे। उन्होंने अनुभव किया कि ये जीव जन्तु बिना किसी विशेष साधन या सामग्री के जीवन यापन करते हुए केवल प्रकृति की सहायता से सब प्रकार स्वस्थ सशक्त और कार्यक्षम बने रहते हैं, जबकि मनुष्य प्रकृति से दूर हट जाने के कारण तरह-तरह की आधि-व्याधियों में ग्रस्त रहता है। इसलिए उन्होंने विभिन्न पशुपक्षियों के बैठने तथा शारीरिक अंगों को खींचने तथा ढीले करने के ढंग से ऐसी विधियाँ खोज कर निकालीं जिनसे विभिन्न अंगों का व्यायाम और विश्राम का उद्‌देश्य पूरा हो सके और उन पर किसी प्रकार का कुप्रभाव न पड़कर उनकी क्रिया-शक्ति की वृद्धि हो सके।

आसनों की पाँच श्रेणियाँ

इस प्रकार जिन योगासनों का प्रचार प्राचीन काल में किया गया था वे मुख्यतः पाँच श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं।

१. वे आसन जो विभिन्न प्रकार के प्राणियों के रहन-सहन और उठने-बैठने के ढंग के आधार पर निकाले गए हैं, जैसे भुजंग, शलभ मयूर, वक, कुक्कुट, मकर, उष्ट्र, हंस, काक, मत्स्य, कूर्म, सिंह वृश्चिक आदि। २. कुछ आसन विशेष पदार्थों की आकृति से मिलते जुलते होने के कारण उनके नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं, जैसे हल, धनुष, चक्र, वज्र, शिला, नौका आदि। ३. कई प्रकार की वनस्पतियों और वृक्षों के अनुकरण पर भी कुछ आसनों का आविष्कार किया गया, जैसे पद्मासन, लतासन, ताड़ासन, वृक्षासन, आदि। ४. जो आसन शरीर के विशेष अंगों को पुष्ट बनाने या नीरोग करने के उद्देश्य से प्रचलित किये गये हैं उनका नामकरण उन अंगों के नाम पर ही कर दिया गया है, जैसे सर्वांगसन. शीर्षासन, गर्भासन, एकपाद-ग्रीवासन, हस्त पादासन आदि। ५. कुछ आसन व्यक्ति विशेष के नाम पर भी प्रसिद्ध हो गये हैं, जैसे मत्स्येन्द्रासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन महावीरासन, ध्रुवासन आदि।

आसनों का प्राकृतिक स्वरूप

पशु पक्षियों के रहन-सहन का यदि हम साधारण रूप से निरीक्षण करें और उनकी खास-खास क्रियाओं को ध्यान से देखें तो इस प्रकार के आसनों का मूल आधार समझ में आ सकता है। उदाहणार्थ कुत्ता जब सुस्त पड़ा रहता है तो ताजगी और स्फूर्ति-प्राप्त करने के लिए प्रायः एक वार आगे के पैरों पर और दूसरी बार पिछले पैरों पर जोर डालकर अपने बदन को खूब जोर से आगे और पीछे की तरफ खींचता है। इससे उसके शिथिल स्नायु उत्तेजित होकर सक्रिय बन जाते हैं, और रक्त का संचार बढ़ जाता है। इसी तरह अन्य पशु-पक्षी भी समय-समय पर अपने स्नायुओं पर तनाव डालकर स्फूर्ति प्राप्त किया करते हैं।

बिल्ली जब सोकर उठती है तो अपने पैरों को कुछ नजदीक

लाकर उनकी नसों को तानती है जिससे उसकी पीठ का मध्य-भाग ऊँचा उठ जाता है। ऐसा करने से उसकी सुस्ती दूर होकर वह चैतन्य हो जाती है और फुर्ती से अपना काम करने लगती है।

इसी प्रकार बन्दर, हिरन, सिंह, रीछ आदि पशु समय-समय पर ऐसी क्रियाएँ और चेष्टायें करते रहते हैं जिससे उनका शरीर पूर्णतः सक्रिय रहता है और चर्वी नहीं बढ़ने पाती। बन्दर जब एक मकान से दूसरे मकान पर कूदता है या सिंह जब अपने शिकार पर झपटता है तो देखा जाता है कि वे झपटने की विपरीत दिशा में अपने स्नायुओं और पेशियों को खींचते हैं। जितनी लम्बी छलाँग लगानी होती है उतना ही पीछे की ओर जोर डालते हैं। फिर कूदने की चेष्टा में एक दम पेशियों को ढीला छोड़कर आगे की तरफ दवाव डाल देते हैं। जिस प्रकार बाण छोड़ने के लिए धनुष की डोरी को पीछे की ओर जोर से खींचा जाता है तो वही डोरी छोड़ने पर उतने ही जोर का दवाव आगे की तरफ डालती है और बाण को दूर फेंक देती हैं। इसी प्रकार पीछे की तरफ खिची हुई माँस-पेशियाँ और नसें समस्त शरीर को आगे की तरफ फेंक देती हैं।

इसी प्रकार प्राचीन अन्वेषकों ने सर्प, मत्स्य, मयूर, ऊँट, आदि की गतिविधियों का निरीक्षण किया और उनकी विशेषताओं पर ध्यान देकर कई लाभदायक आसनों को खोज निकाला। उदाहरण के लिए कहा जाता है कि मोर का पाचन-संस्थान बड़ा प्रबल होता है और वह साँप तथा अन्य कठोर वस्तुओं को सहज में पचा डालता है। इस आधार पर मयूरासन की कल्पना करके मनुष्य के पाचन संस्थान, छाती और भुजाओं की उन्नति की विधि निकाली गई। साँपों के विषय में किम्बदन्ती है कि उनका वीर्य सिर में एकत्रित होकर वहाँ एक प्रकार की चमक उत्पन्न कर देता है। इस आधार पर भुजंगासन का

आविष्कार किया गया जिससे जठराग्नि उद्दीपन होकर वीर्य वृद्धि में काफी सहायता मिलती है।

शरीर तत्वविदों ने एक और ऐसी खोज की है जिससे आसनों की वैज्ञानिकता सिद्ध होती है। जीव-जगत की विभिन्न योनियों को पार करने के बाद अन्त में प्रकृति ने मानव-शरीर की रचना की है। जैसे किसी यात्रा की मंजिल तय करने वाले की अनुभूति में केवल मंजिल का ही ध्यान नहीं रहता वरन् सम्पूर्ण मार्ग के प्रधान दृश्यों की प्रतिच्छाया भी सूक्ष्म रूप से उसकी अनुभूति में स्थिर रहती है, उसी प्रकार मानव-गर्भ में प्रत्येक योनि की मुख्य विशेषतायें भी सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती हैं। गर्भावस्था में मनुष्य की जो सबसे प्रथम आकृति होती है और फिर क्रमशः परिवर्तन होते हुये जिस प्रकार उसका रूपान्तर होता जाता है उसका निरीक्षण करने वाले वैज्ञानिकों का कथन है कि गर्भस्थ भ्रूण के ये विभिन्न रूप कीड़ा, मछली, मेंढक, बन्दर आदि अनेक प्राणियों की तरह दिखलाई पड़ा करते हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर योगियों में यह मान्यता हो गई है कि जिस प्रकार जगत में चौरासी लाख योनियाँ हैं उसी प्रकार आसनों की संख्या भी उतनी ही हो सकती है। उपयोगिता और लाभ की दृष्टि से योगियों ने उनमें से चौरासी आसन अपने अभ्यास के लिये छाँट लिये हैं। पर सर्व साधारण के लिए इन चौरासी आसनों का भी उपयोग नहीं है। इनमें से कई आसन तो विशेष कष्टसाध्य होने से साधारण लोगों के अनुपयुक्त हैं, और कुछ लम्बे समय तक ध्यान करने के लिये उपयोगी हैं।

आसनों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे जीव जगत की स्वाभाविक प्रक्रियाएँ तथा चेष्टायें हैं। कृत्रिम व्यायामों की तरह उनमें कोई ऐसी बात नहीं जो एक अंग को लाभ पहुँचाने के साथ दूसरे अंग को किसी प्रकार की हानि पहुँचा सके। जिस प्रकार दण्ड, बैठक, मुगदर आदि भारी व्यायामों को अधिक करने से माँस पेशियों का

आकार बढ़ जाता है, उनमें अधिक परिणाम में रक्त एकत्रित हो जाता है, रक्त की अधिकता होने से मज्जातन्तु फट जाते हैं और स्नायु तथा माँसपेशियाँ थोड़े ही समय में कड़ी पड़कर निष्क्रिय हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप अनेक प्रकार की शारीरिक त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और स्वास्थ्य की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है।

इसके विपरीत आसनों का तथा अङ्ग-संचालन का व्यायाम ऐसा होता है जैसे कि एक नवजात शिशु हाथ-पैरों को स्वभावतः ही चलाता और फेंकता रहता है, जिससे उसकी जीवनी-शक्ति बढ़ती है और शरीर का विकास होता है। शारीरिक व्यायाम एक प्राकृतिक आवश्यकता है और इसका स्वाभाविक रूप स्नायुओं तथा माँस पेशियों में खिचाव उत्पन्न करना तथा शिथिलीकरण ही है। इससे उन पर अनावश्यक दबाव न पड़कर उनकी क्रियाशक्ति बढ़ती है। इससे शरीर के विभिन्न अंग पर्याप्त समय तक अपना कार्य उचित रूप से करते रहने में समर्थ होते हैं और मनुष्य को स्वास्थ्य-युक्त दीर्घ-जीवन प्राप्त होता है।

स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से चार प्रकार के आसन—

स्वास्थ्य का सुधार और वृद्धि के उद्देश्य से जो आसन किये जाते हैं। उनको चार मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—१. खिचाव प्रधान आसन २. प्राणायाम सहित किये जाने वाले आसन ३. बल और शक्ति बढ़ाने वाले आसन ४. स्नायु संचालन में सहायक आसन।

सभी प्रमुख आसन इन वर्गीकरणों में बँट जाते हैं। इन सभी की विशेषता यही है कि इनमें श्रम और विश्राम का समुचित संतुलन है। जहाँ कुछ अंगों से इनमें काम कराया जाता है, कुछ को विश्राम दिया जाता है। स्वास्थ्य रक्षा के लिये दोनों ही समान रूप से अनिवार्य हैं। इसीलिये जिन आसनों में कुछ अंगों से व्यायाम कराया

जाता है वहाँ अन्य अंगों को शिथिलीकरण क्रिया द्वारा आराम भी दिया जाता है। जिन आसनों में शारीरिक अंगों पर अधिक जोर पड़ता है अनावश्यक थकान उत्पन्न होती है, उनके तुरन्त बाद शवासन का भी विधान है ताकि शीघ्र ही थकान दूर हो, साम्य स्थिति आ जाय। प्रस्तुत पुस्तक में जिन आसनों का विधान बनाया गया है उनमें उपरोक्त वर्गीकरण को नहीं बल्कि कुछ के योगों व थोड़े संशोधनों सहित विशिष्ट आसन क्रमों को प्रधानता दी गयी है। पैर, पेट-पेडू, रीढ़, फेफड़े-हृदय, कंधे-हाथ तथा गर्दन मुँह इन ६ अंग विशेषों में से प्रत्येक के लिये दो-दो आसन योग निर्धारित किये गये हैं। जो प्रचलित आसनों से पूर्व परिचित हों उन्हें क्रम को समझने में आसानी हो इसी कारण मान्यता प्राप्त वर्गीकरण भी यहाँ प्रस्तुत किया गया। विस्तार से इन आसन योगों की चर्चा आगामी अध्याय में निर्देशों सहित की गयी है।

सामान्य पूर्व नियम--

आसन क्रम आरम्भ करने के पूर्व कुछ सामान्य नियम जान लेना भी अनिवार्य है। मात्र पढ़कर आरम्भ कर देने से कोई लाभ नहीं। पूर्व नियमों को पूरा समझने के बाद ही अभ्यास आरम्भ करना चाहिए।

१. प्राणायाम के साथ किया जाने वाला आसन-व्यायाम विशेष लाभ दायक होता है क्योंकि उसके द्वारा भीतरी अङ्गों का संचालन होता रहता है और उनका प्रभाव स्नायु-मण्डल पर विशेष रूप से पड़ता है। इस प्रकार का व्यायाम क्रमशः ही बढ़ाना चाहिए क्योंकि श्वाँस को बलपूर्वक रोकने से हानि होने की सम्भावना रहती है। जिन लोगों को दिल की धड़कन की शिकायत हो या हृदय में किसी प्रकार का दोष हो उन्हें प्राणायाम सहित आसन नहीं करने चाहिये।

२. आसन-व्यायाम स्त्रियों के लिए भी बहुत उपयोगी हैं। स्त्रियों को प्रायः घर के भीतर रहना पड़ता है, शिक्षित स्त्रियों को भी घर से बाहर जीवन व्यतीत करने का अवसर कम ही मिलता है। इसलिए उनके लिए आसन या अंग संचालन का व्यायाम विशेष आवश्यक है, जिससे उनका स्वास्थ्य स्थिर रह सकता है। पर जिन आसनों में गुदा और अण्डकोषों के बीच में ऐड़ी लगाई जाती है उन्हें नहीं करने चाहिए क्योंकि ऐसा करने से प्रजनन अङ्गों पर कुप्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है। गर्भावस्था में कठिन व्यायाम बिल्कुल न किया जाय पर उस अवस्था में हलका व्यायाम करना बहुत लाभदायक होता है और इससे प्रसव के समय कठिनाई नहीं जान पड़ती। इस अवधि में ब्रह्मचर्य पालन का अधिक ध्यान रखना चाहिए और खान-पान में स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का पालन करना चाहिए। मासिक धर्म की अवस्था में भी स्त्रियों को आसन-व्यायाम वर्जित है।

३. जो लोग आसन-व्यायाम से पूरा लाभ उठाना चाहें, उन्हें किसी विशेषज्ञ से अथवा किसी अच्छी पुस्तक से यह जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है कि किस आसन के बाद कौन-सा आसन किया जाय। यों मनमाने ढङ्ग से चाहे जो आसन करते रहने से अधिक लाभ नहीं हो सकता और कभी-कभी हानि की सम्भावना भी रहती है। जैसे विशेष परिश्रम वाले आसनों के पश्चात् विश्रामदायक आसन का अभ्यास करना उचित कहा गया है। किस आसन के बाद कौन-सा आसन विशेष लाभदायक होता है इसका वर्णन आवश्यक होने पर उन आसनों की विधि के साथ ही किया जायगा।

(४) आसन-व्यायाम के साथ दण्ड-बैठक जैसे भारी व्यायामों के करने का विधान नहीं है। आसनों के बाद अधिक परिश्रम का कार्य करने से निर्बलता बढ़ने की सम्भावना रहती है। यदि शरीर

को विशेष मजबूत और संगठित बनाने के लिये विशेष परिश्रम वाले व्यायाम करने की इच्छा हो तो आसनों तथा व्यायाम के अभ्यास का समय पृथक्-पृथक् रखना चाहिए। जैसे सुबह आसन किये जायें और शाम को अन्य कसरतें की जायें।

५. आसन-व्यायाम करने वाले को तमाखू, बीड़ी, भंग, अफीम, चाय, कॉफी, शराब आदि जैसे दुर्व्यसनों से सर्वथा बचना चाहिए। इन नशों के कारण मनुष्य का हृदय कमजोर हो जाता है और फिर उसके लिए परिश्रम के आसन करना हानिकारक होता है। जिन लोगों को पूर्वाभ्यास अथवा पिता-माता के दुर्व्यसनी होने के कारण हृदय की कमजोरी की शिकायत हो गई हो उनको यथासम्भव लेटकर किये जाने वाले आसनों का ही अभ्यास करना चाहिये। उनके द्वारा हृदय को विश्राम मिलता है और अन्य शारीरिक अङ्गों को अधिक लाभ होता है। इसके साथ सब प्रकार के नशों और दुर्व्यसनों का त्याग कर देना भी आवश्यक है।

६. आसन-व्यायाम तथा सभी तरह के व्यायामों के साथ ब्रह्मचर्य पालन का ध्यान रखना जरूरी है। वीर्य रक्षा शरीर की पौष्टिकता तथा दृढ़ता के लिए परम आवश्यक और महत्व की बात है। इसलिये सदैव इस सम्बन्ध में संयम रखना स्वास्थ्याभिलाषी का कर्तव्य है।

७. खान-पान की शुद्धता तथा पवित्रता का ध्यान रखना भी बहुत जरूरी है। माँस आदि तामसी पदार्थों का व्यवहार करने वाले लोगों के लिए आसनों का अभ्यास करना और उससे लाभ उठाना कठिन होता है। इसलिए आसन प्रेमी को शुद्ध, हल्का और स्वल्प आहार करना चाहिए। दूध और घी का सामान्य प्रयोग करना आवश्यक है, पर इन पदार्थों को भी अधिक परिमाण में ग्रहण करना ठीक नहीं। सबसे मुख्य बात यही है कि हम जो कुछ खायें वह पूरी

तरह हजम होकर शरीर में लग जाये और पेट में भारीपन का अनुभव न हो। भोजन की सात्विकता का ध्यान रखने से आसनों के अभ्यास में शीघ्र सफलता मिलती है।

(८) विचारों की शुद्धता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। जो लोग विषय भोग, कामुकता, अश्लीलता के भाव मन में लाते रहते हैं या इस प्रकार की बातचीत या मनोरञ्जन करते रहते हैं वे कभी उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त नहीं कर सकते। गन्दे या हीन विचार रखना स्वयं ही एक बड़ी बीमारी है। किसी भी उत्तम क्रिया का लाभ तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि उसमें आंतरिक भावना का भी योग न हो।

आसन करते समय हमको यह भावना भी करते रहना चाहिये कि उसके द्वारा हमारे भीतर शक्ति की वृद्धि हो रही है और हमारी दुर्बलता और त्रुटियाँ दूर होकर स्वास्थ्य की भरपूर उन्नति हो रही है। इसके लिए व्यायाम करने का स्थान भी ऐसा हो जो सुहावना तथा स्वच्छ वायुयुक्त हो और जहाँ स्वभावतः मन में शान्ति और प्रसन्नता के भाव का उदय हो। यदि वहाँ अगल-बगल में हनुमान जी, भीम अथवा अन्य प्रसिद्ध शक्तिशाली पुरुषों के चित्र, मूर्तियाँ आदि हों तो और भी अच्छा है। व्यायाम करते समय अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों पर दृष्टिपात करते हुए यह भावना करनी चाहिए कि उनमें शक्ति का संचार हो रहा है। भुजाओं और जाँघों को देखकर उनके सुडौल और मजबूत होने की भावना की जाय।

९. नियमितता और समय का ध्यान रखना एक बड़ी उपयोगी और लाभदायक प्रवृत्ति है। जो व्यक्ति इस प्रकार के व्यायाम को महत्वपूर्ण समझकर उसे नियत समय पर बिना नागा के करता रहेगा वही उसका वास्तविक लाभ उठा सकेगा। चाहे जब, कभी कम और कभी अधिक, मनमाने ढङ्ग से व्यायाम कर लेने से उसका लाभ

बहुत कम हो जाता है। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक स्वास्थ्य-वर्धक व्यायाम एक योजनाबद्ध ढङ्ग से लगातार प्रतिदिन ठीक समय पर करते रहने की व्यवस्था बनानी चाहिए।

१०. इन सब नियमों का पालन करने के साथ दृढ़ इच्छा-शक्ति, पूर्णविश्वास और आन्तरिक श्रद्धा की भावना रखना भी आवश्यक है। किसी प्रकार का दबाव या विवशता का अनुभव करते हुए व्यायाम करना उसके लाभों को बहुत घटा देता है। इसलिए व्यायाम करते समय मन में प्रसन्नता तथा उत्साह का भाव रखना कि उसके द्वारा हमारी शारीरिक और मानसिक उन्नति हो रही है, साधारण व्यायाम के लाभ को भी बहुत बढ़ा देता है।

कुछ अन्य ध्यान दने योग्य बातें

आसन व्यायाम मनुष्य के लिए एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसमें न किसी बाहरी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है न किसी कृत्रिम यन्त्र आदि का सहारा लिया जाता है। यथासंभव प्राकृतिक ढंग से अपना आहार-विहार रखना ही यथेष्ट रहता है। हाँ, जिन लोगों का रहन-सहन परिस्थितिवश विकृत हो गया है अथवा जो कृत्रिम जीवन के विशेष अभ्यस्त हो गये हैं उनको अपने रहन-सहन में थोड़ा परिवर्तन अवश्य करना चाहिए। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बातें ये हैं—

१. आसन व्यायाम के लिए सर्वोत्तम समय प्रातःकाल का है। गर्मी में तो सूर्योदय के पूर्व यदि इसे कर लिया जाय तो ठीक रहता है। जाड़े में भी सात-आठ बजे तक कर लेना चाहिए। यदि शाम को भी करना चाहें तो दोनों बार थोड़ा-थोड़ा समय बाँट लेना भी लाभदायक होता है।

२. व्यायाम आरम्भ करने से पूर्व शौच और स्नान से निवृत्त हो लेना आवश्यक है। आमाशय और मलाशय का साफ और हल्का

रहना इस व्यायाम में विशेष रूप से आवश्यक है, क्योंकि इसमें भीतरी अङ्गों को ही सशक्त तथा निर्दोष बनाने की विशेष रूप से चेष्टा की जाती है। इसलिए आरम्भ में पेट में किसी प्रकार की गड़बड़ी या कब्ज हो तो उसे साधारण उपायों से ठीक कर लेना चाहिए। पर औषधि द्वारा कब्ज को मिटाने का प्रयत्न ठीक नहीं। भोजन के हेर-फेर या एनीमा के प्रयोग से ही पेट को साफ रखना उचित है। नियमित रूप से स्नान करना भी आवश्यक है, क्योंकि इससे रक्त का संचार ठीक हो जाता है और उसका भी आसन-व्यायाम में विशेष ध्यान रखना होता है। गर्मी या बरसात में तो ठण्डे पानी से स्नान किया ही जाता है, जाड़ों में भी यदि सामर्थ्य न हो और गर्म पानी लेना पड़े तो वह कम से कम गर्म हो इसका ध्यान रखा जाय। गर्म पानी से अवयवों में ढीलापन आता है और ठण्डे से मजबूत बनते हैं, यही समझने की बात है। फिर अपनी विशेष अवस्था और परिस्थिति का ध्यान तो सर्व प्रथम रखना आवश्यक ही है।

३. किसी भी आसन के अभ्यास में शीघ्रता या हठ नहीं करनी चाहिए। आरम्भ में अधिक व्यायाम पर जोर देने की बजाय या पूर्ण स्थिति को प्रथम दिन ही प्राप्त करने के बजाय ज्यादा ध्यान इस बात पर दिया जाय कि आसन विधि को ठीक-ठीक समझकर नियमानुसार किया जाय। जिस प्रकार पढ़ने में पहले अक्षर-ज्ञान और शब्द निर्माण के नियमों को काफी समय तक सीखकर तब विविध विषयों की पुस्तकों का अध्ययन करते हैं, उसी प्रकार आरम्भ में पूरा व्यायाम करने की अपेक्षा आसनों की ठीक-ठीक विधि को समझकर उसे यथातथ्य सीखने पर ही ध्यान दिया जाय। इसलिए आरम्भ में प्रत्येक क्रिया बहुत थोड़ी देर, दस-पाँच सेकिण्ड ही करनी उचित है। फिर जब विधि का ज्ञान हो जायगा तो स्वयं भी अभ्यास बढ़ता चला जायगा।

४. व्यायाम में कभी अति नहीं करनी चाहिए। जो लोग बहुत जल्दी लाभ उठाने के लिए एक साथ तरह के व्यायाम अधिक मात्रा में करने लगते हैं वे प्रायः फायदा की जगह नुकसान उठाते हैं और उनका उत्साह शीघ्र ही ठण्डा पड़ जाता है। इसलिए जब आसन व्यायम किया जाय उन दिनों अन्य व्यायाम, प्राणायाम अथवा दूसरे विशेष परिश्रम के काम नहीं करने चाहिए। अपनी शक्ति और ध्यान को एक विषय में केन्द्रित करने से ही विशेष सफलता प्राप्त हो सकती है।

५. खुले और पवित्र वातावरण में रहना विशेष महत्वपूर्ण है। आसन-व्यायाम वाले को अधिक से अधिक समय शुद्ध वायु में रहने का प्रयत्न करना चाहिए और अपना निवासस्थान यदि किसी तङ्ग और भीड़-भाड़ के मोहल्ले में हो तो व्यायाम के लिए किसी अन्य खुले हवादार स्थान या बगीचा आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। कपड़े ऐसे न पहने जायें, जिनसे शरीर में बाधा पड़े। इसके सिवाय कुछ समय तक कपड़े बिल्कुल उतार कर शरीर को सूर्य की धूप लगने देना भी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

पंचम अध्याय



प्रस्तावित आसन योग विधान एवं उसका तत्व ज्ञान

स्वस्थ मनुष्य की तुलना हम एक जटिल यंत्र से कर सकते हैं जो किन्हीं विशेष अवस्थाओं में अपना काम पूरा करता रहता है। मशीन चलती रहे, अधिक गर्म न हो जाय, चलते-चलते रुक न जाय; इसके लिए उसकी बराबर सफाई होती रहनी चाहिए, ओवर हालिंग होती रहनी चाहिए। आवश्यक स्थानों पर तेल न पहुँचेगा तो आवाज करते-करते घर्षण प्रक्रिया के बाद एक दिन वह टूट जायेगी या वन्द हो जायेगी। शरीर रूपी यंत्र चलते-चलते रुक न जायें, जीवन यात्रा मैकेनिक की दुकान पर खड़ी न बीते इसके लिए उसे भी नित्यनिरन्तर देख-भाल की आवश्यकता पड़ती है। महत्वपूर्ण नाजुक अंगों को बराबर प्राणशक्ति, प्राणपोषण मिल रहा है या नहीं, इसे देखते रहना व तदनुरूप क्रिया-व्यायामों द्वारा उन्हें अभ्यास देते रहना अनिवार्य है। आहार व मनोबल अकेला काफी नहीं। शरीर को हिलने डुलने का मौका ही नहीं मिले तो उसके विभिन्न अंग धीरे-धीरे व्याधिग्रस्त होते जीर्ण-शीर्ण होते चले जायेंगे। आसनों का विधान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया गया है। यह एक प्रकार की अन्दरूनी मालिश है।

आसनों के प्रचलित स्वरूप को तो अधिकांश लोग जानते हैं,

पर प्रस्तुत विवेचन में अंग विशेषों पर, जहाँ विजातीय द्रव्य एकत्र होने की संभावना अधिक रहती है अधिक ध्यान देखकर शरीर के ६ स्थातों के लिए १२ प्रकार के विशिष्ट आसन योग निर्धारित किये गये हैं। प्रत्येक अंग के लिए यो-दो योग हैं। किसे किया जाय व कितनी बार दुहराया जाय, यह चयन की स्वतंत्रता तो नहीं है पर अपनी स्थिति व प्रकृति के अनुसार चुन सकने योग्त मन स्थिति हो तो ऐसा कर सकते हैं, वरना प्रत्यक्ष मार्ग दर्शन से अभ्यास द्वारा इन्हें चुना जा सकता है।

शरीर के ये ६ स्थान इस प्रकार हैं (चत्र क्रमाँक A–1)।

१. कमर से लेकर पैरों की ऊँगलियों तक (चित्र में १)

२. पेट एवं पेडू के अन्दरूनी अङ्ग (चित्र में २)

३. रीढ़ की हड्डी (गर्दन को छोड़कर) व उससे जुड़ी मांस मांस पेशियाँ (चित्र में–३)

४. फेफड़े, हृदय व छाती से निकलने वाली धमनिएँ, शिराएँ व नाड़ियाँ (चित्र में–४)

५. कन्धों के जोड़, नाड़ी गुच्छक व हाथ-ऊँगलियों की पैरों तक (चित्र में–५)

६. गर्दन की हड्डी, सुषुम्ना का ऊपरी भाग, चेहरे की माँस-पेशियाँ व गले के नाजुक अङ्ग (चित्र में ६)

इसमें मस्तिष्क व अन्य नाजुक अङ्गों को छोड़ दिया गया है क्योंकि मनो रोगों-विकारों व मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के लिये क्लिष्ट आसनों के स्थान पर प्राणायाम उपचार का विधान बनाया गया है एवं उस पर अलग से पुस्तक भी प्रकाशित हुई है।

शारीरिक श्रम न कर पाने वालों के लिए आसन-योग के वर्तमान प्रस्तावित क्रम से श्रेष्ठ और कोई क्रम नहीं हो सकता। इसमें कोई भी ऐसा अङ्ग अछूता नहीं रहा है जो इस परिधि में न आता

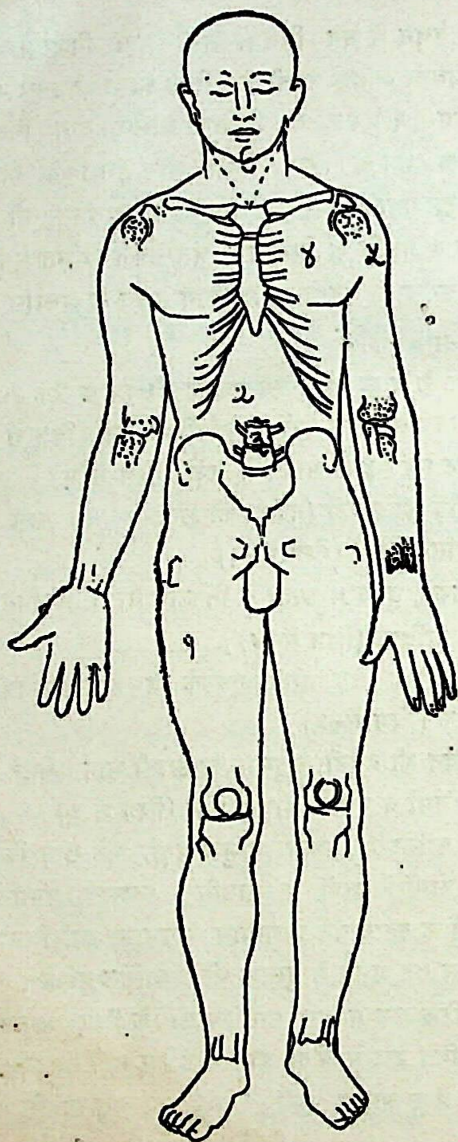


FIG. A-1

Fig A-2

हो। ऋषि प्रणीत आसन क्रमों के मूल उद्देश्य चक्र-उपत्यिकाओं पर दबाव वाले पक्ष का हर आसन योग में समावेश है। इस पक्ष को अलग से प्रत्येक के साथ समझाने का प्रयास भी किया गया है।

कमर से लेकर पैरों की उँगलियों तक के लिए

शरीर का सारा भार पैरों पर आता है। रीढ़ की हड्डियों से भार पेल्विक हड्डियों के माध्यम से २ भाग में विभक्त हो जाता है। जाँघों की एक, मजबूत घुटने की नीचे की दो तथा पैर की शेष हड्डियों का एक धनुषाकार स्प्रिंगदार आर्च मिलकर इस पूरे भार को वहन करता है। पैरों का हिलना-डुलना इस लिये जरूरी है कि शरीर के २ मजबूत जोड़-घुटना व कमर तथा एक जटिल जोड़ एड़ी का-इस हिस्से में ही होते हैं। इनसे जुड़ी माँस पेशियाँ रीढ़ की सशक्त माँस पेशियों के बाद दूसरे नम्बर पर आती हैं। इन्हीं के मूवमेण्ट्स से रक्त पैरों की ऊँगलियों तलुए जैसे सुदूर हिस्सों से चलकर हृदय तक शुद्धि हेतु पहुँचता है। इसे मस्कुलर पम्प कहते हैं। यदि ये अपना काम करने की गति मन्द कर दे अथवा कतई हिले डुले नहीं तो अशुद्ध रक्त पैरों से ऊपर नहीं पहुँचेगा व स्थान विशेषों पर एकत्र होने से तरह-तरह की व्याधियों को जन्म देगा। एक और विशेष बात यहाँ है। शरीर की सबसे लम्बी शिरा तथा (सैफेनसवेन) तथा स्नायु नाड़ी (शियाटिक नर्व) इसी हिस्से में होती हैं। शियाटिक नर्व के अतिरिक्त भी कई छोटी-छोटी शाखा-प्रशाखाएँ व स्वतन्त्र नसें होती हैं जिनका सक्रिय गतिशील बने रहना पैरों के स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। शियाटिका, न्यूराइटिस आदि रोग ऐसे हैं जो अनावश्यक दवाव अशक्ति व विजातीय द्रव्य एकत्र होने की फलश्रुति होते हैं।

अशक्ति से घुटने, कमर व एड़ी के जोड़ सबसे अधिक कष्ट सहते हैं। इनकी सतत अन्दरूनी मालिश न होते रहने से दो हड्डियों

के बीच का रस सूख जाता है व अनेकानेक रोगों का कारण बनता है। गठिया तो इन सबका संयुक्त नाम है पर उसके छोटे-छोटे स्वरूप कई हैं।

इडिमा, वर्जर डीसिज, वेरीकोज वेन्स, मायोसाइटिस आदि ऐसे रोग हैं जो पैरों को गति न मिलने व उनकी अशक्ति के कारण होते हैं। इस विडम्बना से बचने के लिए निम्नलिखित आसन योग क्रम बनाया गया है।

आसन योग क्रम (१)

प्रारंभिक क्रियायें

(यह प्रत्येक लेटकर किये जाने वाले आसन योगों के लिए एक समान हैं]—समतल भूमि या तखत पर सादा दरी, चटाई या मोटा कपड़ा बिछा लें। शरीर पर न्यूनतम वस्त्र हों। सीधे लेट जायें। गहरी श्वांस खींचते हुए अंगड़ाई लेने जैसा तनाव शरीर को दें। [चित्र क्र. अ के समान]। तनाव बढ़ाने के साथ गहरा श्वांस खींचे और शरीर ढीला करने के साथ श्वांस बाहर निकालें। श्वांस लेने, छोड़ने, तनाव देने व ढीला छोड़ने का क्रम झटके से नहीं धीरे-धीरे करें। यही क्रम पेट के बल लेटकर भी दुहरायें। दोनों अवस्थाओं में तीन चार बार यह क्रम चलाकर व्यायाम प्रारम्भ कर दें।

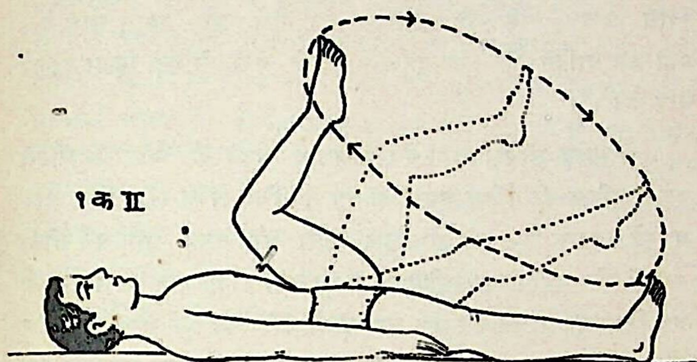
मुख्य क्रिया

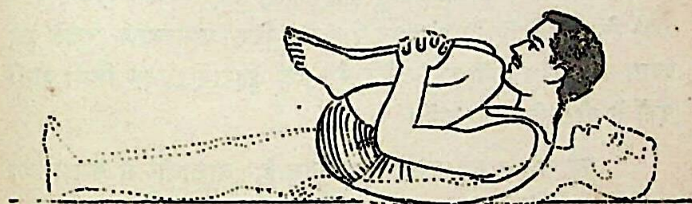
अब मुख्य क्रिया प्रारम्भ होती है। चित्र क्रमांक १ क । देखें व निम्नलिखित क्रियानुसार अपना अभ्यास आरंभ करें।

सीधे लेटें दोनों पैर को पूरी तरह नीचे की ओर तनाव देकर रखें। गहरा श्वांस खींचें, बायाँ पैर कूल्हे से मोड़ते हुए घुटना सीधा रखते हुए धीरे-धीरे उठायें। लगभग ३० से ४५ अंश तक उठाकर रुकें। पंजा टखने के जोड़ से (घुटना सीधा रखते हुए) गोल-गोल

क अ

१ क I





१ क III

घुमायें। पैर धीरे से जमीन पर वापिस रख दें इसके साथ ही श्वास निकाल दें। यह क्रम दाहिने पैर से दुहरायें। यह क्रिया प्रत्येक पैर से दो-दो बार करें।

पुनः श्वास खींचकर बायां पैर पहले की तरह उठायें। घुटने एवं टखने के जोड़ स्थिर रखते हुए कूल्हे के जोड़ को चलाते हुए पैर को दो बार गोल-गोल घुमायें (चित्र १ क I–निर्देशित दिशानुसार)

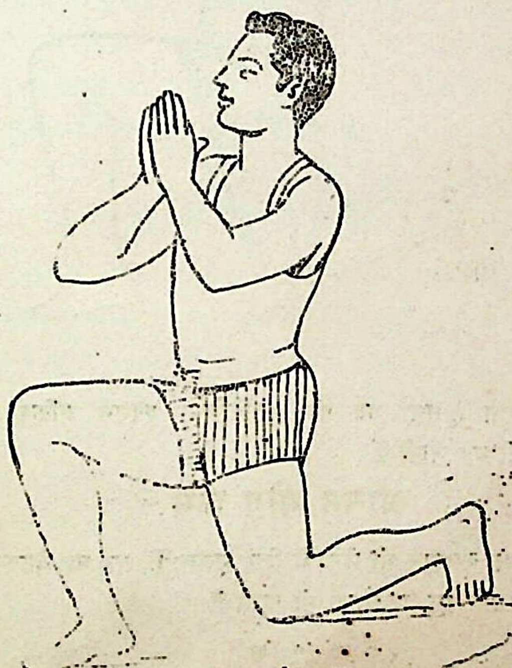
श्वांस अन्दर रोके रहें। धीरे से पैर नीचे रखें—श्वास छोड़ दें। यही क्रम दाहिने पैर से दुहरायें। दोनों पैरों से यह क्रिया दो-दो वार करें।

★श्वास खींचें। वायां पैर कूल्हे एवं घुटने को जोड़ों से मोड़ते हुए साइकिल की पैंडिल घुमाने के ढंग से (चित्र १ क II) तीन वार घुमायें। श्वास निकालते हुए उसे पहले की तरह भूमि पर सीधा रख दें और यही क्रिया दाहिने पैर से दुहरायें। दो-दो वार दोनों पैरों से यह क्रिया दुहरा लेने पर एक साथ दोनों पैरों को एक साथ साइकिल चलाने की तरह ५-६ चक्कर घुमायें। फिर भूमि पर यथावत् रख दें।

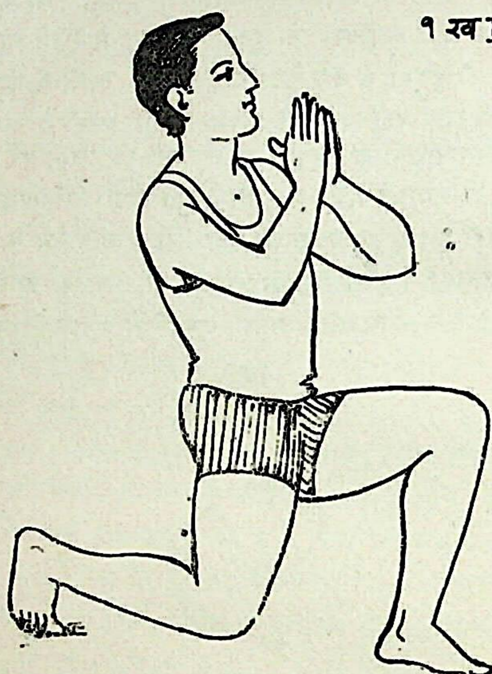
★अन्त में वायाँ पैर घुटने से मोड़ते हुए घुटना सीने तक लायें। दोनों हाथों से पैर को पेट की ओर दबायें, ठोढ़ी घुटने से स्पर्श करें। इस स्थिति तक आते-आते श्वास पूरी तरह निकाल दें। (चित्र १ क III) फिर हाथों से पैर छोड़कर पैर और सिर यथास्थान रखते हुए श्वास खींच लें। यही क्रम दाहिने पैर से दुहरायें। यह क्रिया दोनों पैरों से तीन-तीन वार करें।

यह आसन क्रम सबके लिए सुगम है, आसानी से समझा जा सकता है व पैरों के लिए एक समग्र व्यायाम है। यदि प्रारम्भ में कुछ कठिनाई निर्देशानुसार करने में आए तो अङ्गों को लचीला वनने के लिये समय आने तक का धैर्य रखें पर क्रम न तोड़ें। प्रारम्भ में साइकिल की तरह पैर घुमाने में कठिनाई हो सकती है पर अभ्यास से यह क्रम सहज गति में आ जाता है। चित्र १ क II के अनुसार पैर मोड़ते समय दूसरे पैर का सीधा रहना अनिवार्य है। यदि प्रारंभ में वह घुटने से मुड़ता है तो तनिक भी चिन्ता न करें। स्नायुओं को अनावश्यक खिचाव न आने दें। धीरे-धीरे अभ्यास से वह सीधा वना

रहने लगेगा। प्रौढ़ों व अनभ्यस्त व्यक्तियों, हमेशा कुर्सी पर बैठे या कार में चलने वाले व्यक्तियों के घुटने सहजता से मुड़ते नहीं। इसी प्रकार रीढ़ की हड्डी के बल लेटकर १ क III वाली क्रिया करते हैं तो कोई आवश्यक नहीं कि ठोड़ी प्रारम्भ से ही घुटनों से लग जाय। धीरे-धीरे माँसपेशियों के अभ्यस्त व लचीली हो जाने पर यह क्रम स्वाभाविक हो जाता है। यह व्यायाम बहुत कुछ उत्थितपादासन से मिलता जुलता है। सायकल चालन मुद्रा और जोड़ देने से यह योग समग्र बन जाता है। इससे पैरों के व्यायाम के अलावा आमाशय की भी अच्छी तहर से मालिश हो जाती। अम्लपित्त, वायु विकार, कब्ज



१ ख I



१ ख II

भी दूर होता है तथा पेट की मांसपेशियाँ श्वसन प्रक्रिया के लिए शक्तिशाली बन जाती हैं।

आसन योग क्रम २

यह व्यायाम भी पैरों के लिए मूलतः है, पर यह बैठकर किया जाता है। इसे हनुमान बैठक भी कहते हैं।

१ [ख]

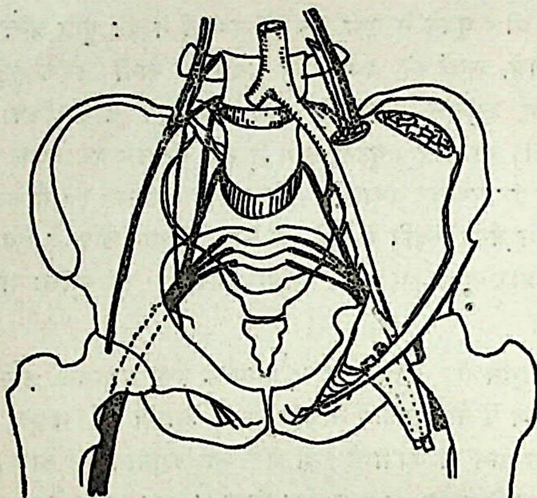
सहज स्थिति में सीधे खड़े हों। पैरों को फैला लें। दोनों

पन्जों के बीच घुटने से एड़ी तक की लम्बाई से ढ़ड़े गुना अन्तर रखे। श्वास खींचें, पन्जों को यथास्थान रखते हुए बायीं तरफ मुड़ें, घुटने मोड़ते हुए हनुमान बैठक की तरह बैठें, हाथ जोड़ें (चित्र १ ख I एवं ख II) की तरह। घुटना भूमि से छुए पर उस पर वजन न पड़े। हथेलियों पर परस्पर यथाशक्ति दवाव दें लगभग १० सैकिन्ड रुकें, फिर पहले जैसी स्थिति में खड़े हो जाये श्वास छोड़ दें। यही क्रम दाहिनी ओर मुड़ते हुए करें। दोनों क्रियाओं को क्रमशः पांच बार दुहरायें।

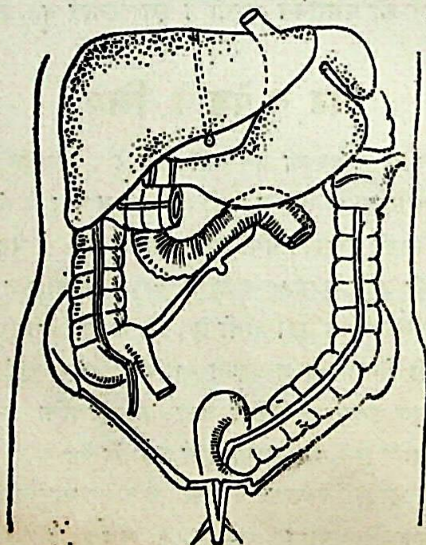
इससे पैर, जाँघ तथा पेडू प्रदेश के रक्त संचालन व स्नायुओं की मालिश में तो योगदान मिलता ही है, सामने के अङ्गों का भी अच्छा व्यायाम हो जाता है। दो पैरों का व्यायाम एक साथ होने के अलावा गहरी श्वांस भी स्वतः हर क्रिया के साथ व्यक्ति लेता जाता है जो सारे शरीर को प्रभावित करती है इस प्रकार यह प्राणायाम युक्त व्यायाम है।

पेट व पेडू के लिये

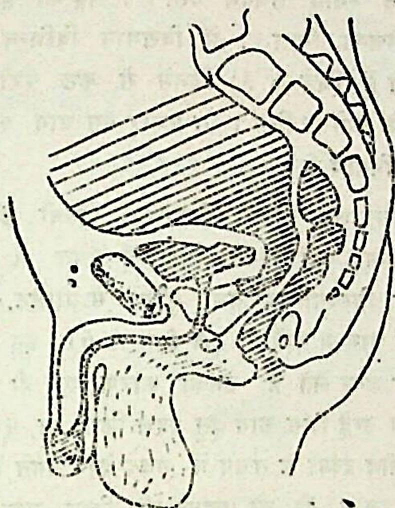
शरीर के महत्वपूर्ण अंग यहीं होते हैं। प्रजनन, मूत्रग्राही व पाचन संस्थान सम्वन्धी ऐसे अंग जो शरीर स्वास्थ्य व सौष्ठव से जुड़े हुए हैं, तथा नाड़ी गुच्छक, गेंगलियान आदि पेट व पेडू के विभिन्न स्थानों-रीढ़ की हड्डी के ऊपर व दोनों तरफ बैठे होते है। महत्त्वपूर्ण अंतःस्रावी ग्रन्थियाँ भी यहीं होती हैं। ऐसे में इस भाग की, विशेषकर इस कारण भी कि इनकी अन्दरूनी मालिश सम्भव नहीं है, सक्रियता को बढ़ाना तथा उनको उत्तेजना देना जीवनीशक्ति वनाये रखने के लिए वहुत जरूरी है। सवसे वड़ी वात यह कि पेडू में ही सुषुम्ना नाड़ी समाप्त होकर नाड़ी गुच्छक वनाती है व लम्वर-सैक्रल प्लेक्सेस के माध्यम से स्वचालित स्नायु संस्थान से संबंध जोड़ती हुई विभिन्न



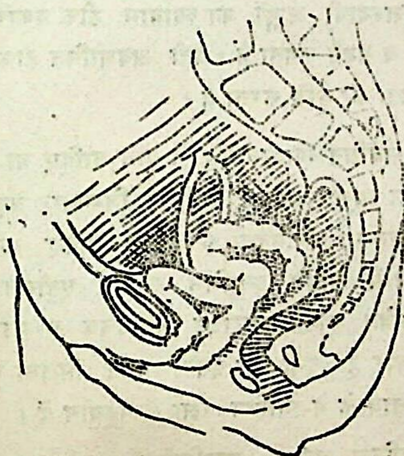
A 3



A 4



A 5



A 6

नाजुक अंगों को अपने स्नायु संवेदन देती है। पेडू की हड्डी, जो रीढ़ की हड्डी का निचला सिरा है, में विद्यमान विभिन्न छिद्रों से कई नाड़ियाँ निकलती हैं (चित्र A 3) जिनमें से कुछ पैरों के लिए उत्तेजन व कुछ पेडू के अंगों के लिए। इस प्रकार इस भाग का सतत होती है उतना ही अनिवार्य है।

आमाशय, अग्न्याशय, लीवर, पित्ताशय, तिल्ली छोटी-बड़ी आँत, गुर्दे, एड्रीनल्स यहीं स्थित होते हैं (चत्र A 4) एवं महिलाओं में गर्भाशय, डिम्बग्रन्थियाँ तथा पुरुषों में प्रोस्टेट, सेमीनल वसीकल्स आदि इसी भाग में होते हैं (A 5 व A 6)। इन अङ्गों से संबंधित रोग जब भी जन्म लेते हैं, उनका कारण एक ही होता है, निष्क्रियता। प्रकृति ने उन्हें जिस कार्य हेतु प्रदत्त किया था, पूरी तरह न लेने पर, वे विजातीय द्रव्यों के संचय में मदद देने लगते हैं। गुर्दों में रक्त प्रवाह पूरी तरह न हो तो छानने की क्रिया मन्द पड़ेगी। मलनिष्कासन हेतु उत्तरदायी अङ्गों का व्यायाम ठीक प्रकार न हो तो मल संचित होने व सड़ने लगता है। यही अवशोषित होकर रक्त में मिलता है, विषाक्तता की वृद्धि करता है।

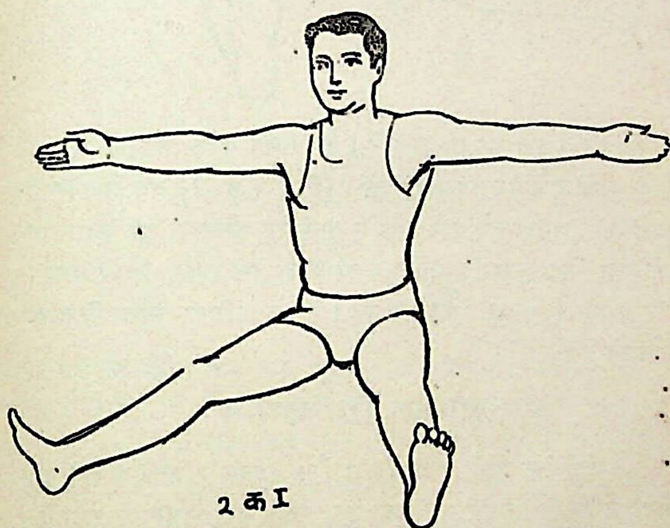
इन अङ्गों से संबंधित व्यायाम ऐसे ही होने चाहिए जो नाजुक अङ्गों पर मामूली तथा स्थूल व्यापार के लिऐ जिम्मेदार अङ्गों पर प्रचुर दबाव डालें, उनका अंतःमर्दन कर उन्हें सक्रिय बना दें। पैन्क्रियाज (अग्न्याशय) से स्रवित इन्सुलिन रस व एड्रीनल ग्रन्थि (वृक्क ग्रन्थि) से स्रवित कॉर्टीकोस्टेराइड चयापचय व शारीरिक स्फूर्त्ति के लिये जिम्मेदार हैं। इन्हें भी इतना काम मिलना चाहिये कि विना अत्यधिक दबाव के ये स्वास्थ्य रक्षा में सहयोग दें।

अम्लपित्त, पेप्टिक अल्सर, डायबिटीज, अपच, बदहजमी, मंदाग्नि, साल एब्जार्पशन, डिसेण्ट्री, पीलिया, गुर्दों में पथरी व सक्र-

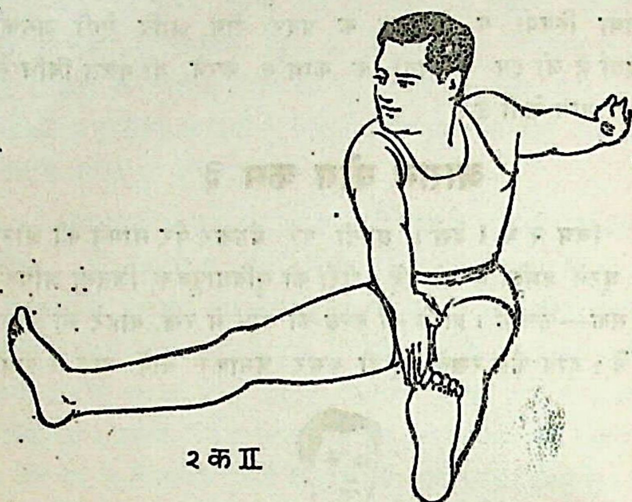
मण तथा स्त्रियों में गर्भाशय के प्रदर रोग आदि ऐसी अनेकों व्याधियाँ हैं जो इन संस्थानों के काम न करने या गलत विधि से करने से जन्म लेती हैं।

आसन योग क्रम ३

चित्र २ क I देखें। धरती पर बैठकर पैर सामने की ओर करें। घुटने जमीन से सटे रहें। पैरों को सुविधापूर्वक जितना अधिक फैला सकें—फैलायें। हाथों को कन्धे की सीध में रखें, बाहर की ओर फैला दें। हाथ फैले रखते हुए ही कमर घुमाकर बायें हाथ से दायें



2 क I

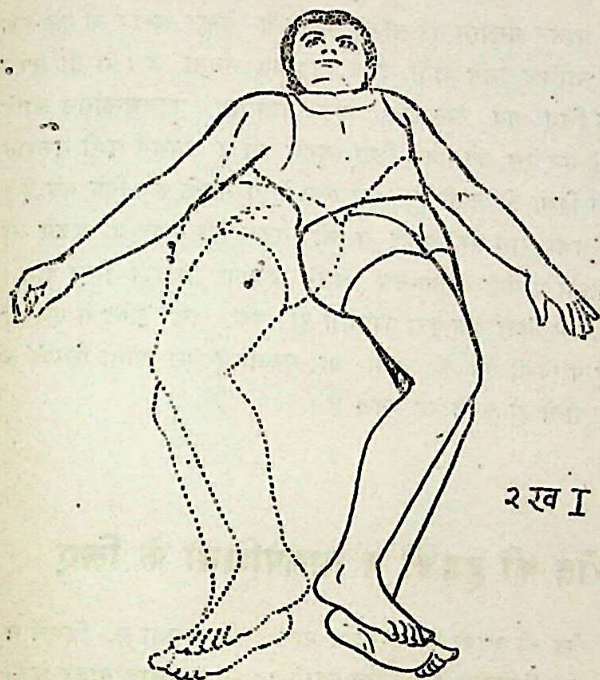


२ क II

पैर का पन्जा छूने का प्रयास करें। इस समय गर्दन विपरीत दिशा में हो व आँखें बाँयें पैर का पन्जा देखें। (चित्र २ क II) अब फिर स्थिति बदलें कमर घुमाते हुए दायें हाथ से बायें पैर का पन्जा छूने का प्रयास करें तथा गर्दन घुमाकर दायें पैर का पन्जा देखें। यह क्रिया मध्यम-गति से एक मिनट तक दुहराते रहें। श्वांस प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से चलने दें।

आसन योग क्रम ४

सीधे लेट जायें, पन्जे मिला लें। (चित्र २ ख I व II) हथेलियाँ शरीर से लगभग एक फुट दूर रखते हुए जमीन से सटा दें। अब सिर और एड़ियाँ अपने स्थान पर रखते हुए कमर को जितनी बांयीं ओर लुढ़का सकें उतना घुमा दें। (चित्र २ ख)। पूरी स्थिति बन जाने पर वापिस सीधे लेटने की स्थिति में आयें। बिना रुके इसी



२ ख I II

प्रकार दाहिनी ओर कमर को लुढ़कायें–घुमायें। पुनः वापिस सहज स्थिति में आयें। यह क्रिया किसी भी स्थिति में रुके बिना लगातार करें। हर लुड़कन के साथ कमर भूमि को छूती रहे। पहले इसे धीमी गति से करें–फिर क्रमशः गति बढ़ावें। इसे २ मिनट तक करें। फिर आवश्यकतानुसार थोड़ा-थोड़ा करके १० मिनट तक बढ़ा सकते हैं। क्रिया के साथ धीरे-धीरे गहरी श्वास लेने–छोड़ने का क्रम चलाया जाय।

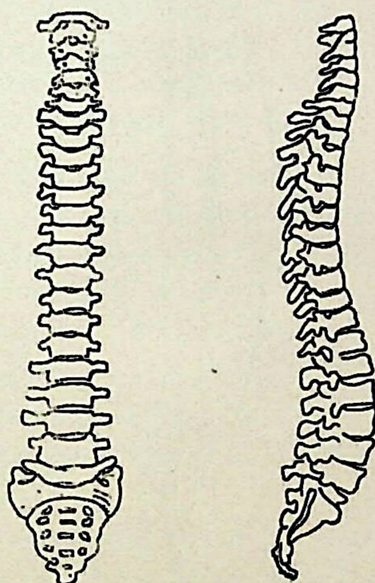
इनमें मुद्रा २क व 'मरुतासन्' से मिलती जुलती प्रक्रिया है

एवं २ ख व 'नाभिचालन' प्रक्रिया है। इनके लाभ अगणित बताये गये हैं। पाचन संस्थान को सक्रिय बनाने से लेकर अन्दर के एक-एक अंग की मालिश इनसे होती है व उद्देश्य सधता है। यों तो अपच आदि के लिए सूर्य नमस्कार, सुप्त वज्रासन, पवनमुक्तासन आदि अनेकों हैं पर ऐसे, जो सबके लिए सुगम हों व जिनमें सभी संस्थान की मर्दन क्रिया हो जाती हो, यहाँ एक में ही संयुक्त कर दिये गये हैं। इनसे वे सभी लाभ मिलने भी सबको सहज ही संभव हो सकेंगे जो सामान्यतया एकांगी आसन-बंध आदि प्रयोगों में नहीं मिल पाते। कम समय में बिना थके पूरा व्यायाम हो सके, इस दृष्टि से इन दो योगों में से किसी एक को चुना जा सकता है या अपनी स्थिति के अनुसार दोनों ही करते रह सकते हैं।

रीढ़ की हड्डी व मासपेशियों के लिए

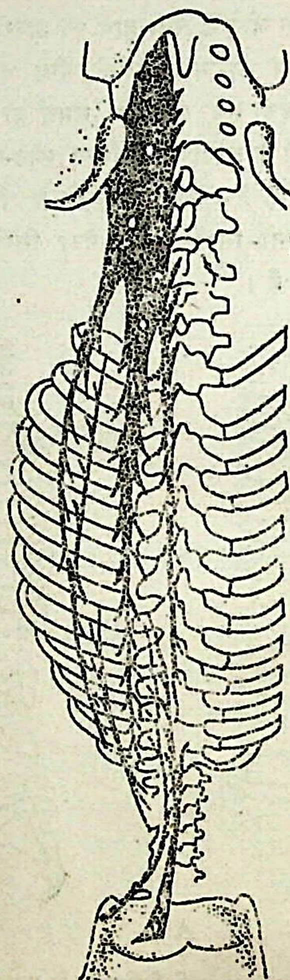
रीढ़ की हड्डी को मेरुदण्ड मार्ग कहा जाता है, जिसमें से सुषुम्ना नाड़ी निकलती है व स्थान-स्थान पर स्नायु प्रवाह बाहर भेज-कर माँसपेशियों का संचालन करती, सारे शरीर से संवेदन मस्तिष्क को भेजती है। लचीली हड्डियों से बना यह तंत्र सर्पिल आकार का है। (चित्र A 7)। ये हड्डियाँ एक के ऊपर एक रखी होती हैं व इनके बीच कुशन होता है जो 'शॉक एब्जार्बर' का काम करता है। जैसाकि कहा जा चुका है, सारे शरीर का भार इनकी धुरी पर से होता हुआ ही नीचे आता व पेडू के स्तर पर से क्रम से दो पैरों की ओर बंट जाता है। विभिन्न लम्बी मांसपेशियाँ गर्दन से नीचे रीढ़ की हड्डी को छाती में १२ पसलियों से, परस्पर एक दूसरे से, कन्धे

के जोड़ व कमर के जोड़ से तथा हाथ की ऊपरी हड्डी से जोड़ती हैं। (चित्र A 8)। इनके कारण ही सामने, पीछे, बाँयें-दायें तथा वक्राकार रूप में रीढ़ की हड्डी मुड़ पाने में समर्थ हो पाती है। सुषुम्ना व अन्य छोटी नाड़ियों के अतिरिक्त विभिन्न छोटे-छोटे गेंगलिया व नाड़ी समूह दोनों ओर होते हैं—छाती के हिस्से में सिम्पेथेटिक तथा पेट व पेड़ू के हिस्से में दोनों—सिम्पेथेटिक व पेरा सिम्पेथेटिक गेंगलियान से इसका संबंध होता है।



A 7

रीढ़ की हड्डी की गतिविधियों से श्वसन क्रियाओं से लेकर विभिन्न चक्र उपत्मिकाओं के सूक्ष्म रस-स्राव तथा पाचन-प्रजनन आदि की क्रियाओं का संबंध है। इसका सक्रिय होना हर दृष्टि से अनिवार्य



A 8

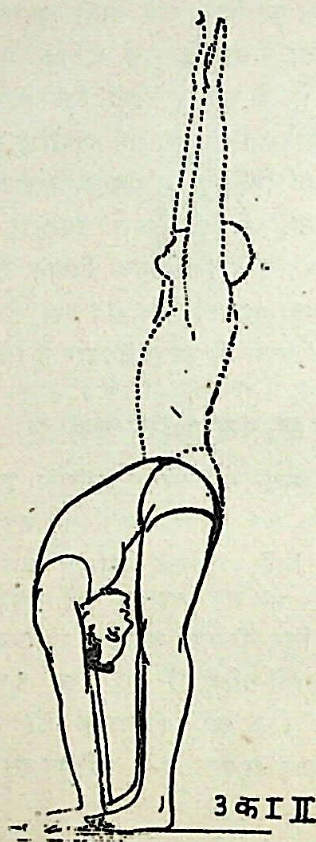
है क्योंकि प्राण-प्रवाह को लेकर जाने वाली वृहन्नाड़ी सुषुम्ना इसमें है। इसकी निष्क्रियता से सांस के रोग, क्रानिक एम्फीजिमा, उथली साँसजन्य अन्यरोग, पेट के रोग, स्लिप्ड डिस्कसिण्ड्रोम, लम्वर स्पांडिलोसिस, स्पांडिलोलिस्थेसिस तथा नर्व काम्प्रेशन जैसी कई विकृतियाँ होती हैं। कहीं भी गतिविधि का अभाव छोटी-छोटी नाड़ियों के स्नायु प्रवाह को रोककर उन्हें निष्क्रिय वना सकता है। रोग का कारण जानने का प्रयास करने वाले चिकित्सक निदान हेतु भाँति-भाँति के परीक्षण करके भी वता नहीं पाते कि रोग क्या है? रीढ़ की हड्डी की सक्रियता का बढ़ जाना ही उनका उपचार हैं। इसके लिए विशिष्ट आसन योग क्रम ५ व ६ अपनाये जाते हैं।

आसन योग क्रम ५

खड़े होकर आसन योग आरंभ करने के पूर्व शरीर को थोड़ा हिला डुलाकर गर्म कर लिया जाय। इससे जकड़न दूर हो जाती है व माँस पेशियाँ शिथिल होकर व्यायाम क्रम आरम्भ होने की स्थिति वन जाती है। अव क्रम आरम्भ करें। पहले सीधे खड़े हों। हाथ ऊपर उठाएँ। सिर भी ऊपर उठायें। श्वास खींचें और पैर की एड़ियाँ उठाते हुए हाथों सहित पूरे शरीर को पूरी शक्ति से ऊपर की ओर खिचाव पैदा करें (ताड़ासन की स्थिति)। श्वास रोके रहें तथा सुविधा पूर्वक २-४ सैकिण्ड इस स्थिति में रुकें। (३ क I क्रम)

अब धीरे से श्वांस निकालते हुए कमर से सामने की ओर झुकें। घुटने सीधे खिंचे हुए रखें। हाथ की उंगलियों से पैर के अंगूठे छूने का प्रयास करें। यह वन जाये तो सिर को घुटनों से छुलाने का प्रयास करें (३ क II)

श्वाँस खींचते हुए सीधे खड़े हों। हाथ नीचे स्वाभाविक स्थिति में रहें। इसी स्थिति में हाथ कोहनी से मोड़े वगैर, खिंचे हुए पीछे



की ओर ले जावें। इसी के साथ गर्दन ऊपर उठाकर गहरी श्वास लें। १-२ सैकिण्ड रुक कर स्वाभाविक स्थिति में आ जावें।

यही क्रम प्रारम्भ में ४-५ बार दुहराएँ, फिर क्रमशः बढ़ाते चले जाएँ।

यह ताड़ासन व पादहस्तासन का सम्मिश्रण योग है। माँस-



पेशियों को लचीला बनाने, मेरुदण्ड का सही विकास करने, स्नायुओं की गति को सहज व अवरोध मुक्त बनाने में ताड़ासन सहायता करता ही है, साथ ही आमाशय व बड़ी आँत की माँस पेशियों का मर्दन कर उनके विकास में भी सहायक बनता है। साथ-साथ श्वसनतंत्र की माँस-पेशियों का व फेफड़ों का भी अच्छा व्यायाम होता चलता है। पाद-हस्तासन मेरुदण्ड की मांसपेशियों को ढीला बनाने, चर्बी कमकर मोटापा दूर करने तथा जहाँ-जहाँ विजातीय द्रव्यों के एकत्र होने की शंका है, उन्हें निष्कासित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दोनों ही आसनों का एक में योग हो जाने से यह हर स्थिति में अधिक उपयोगी है। विशेषकर महिलाओं के प्रजनन अंगों पर इसका प्रभाव बहुत अच्छा पड़ता है। सारे शरीर का स्नायु व रक्त प्रवाह इससे प्रभावित होता है।

आसन योग क्रम ६

पन्जे मिले हुए, एड़ियाँ खुली हुईं, तलवे ऊपर की ओर करके पन्जों से घुटनों तक का भाग भूमि पर टेकते हुए घुटने मोड़कर बैठ जायें (वज्रासन की तरह) हाथ पीछे की तरफ ले जाकर उँगलियाँ

एक दूसरे में फंसा लें। (चित्र ३ ख I) अब श्वाँस निकालते हुए, कमर आगे की ओर झुकाते हुए, मस्तक भूमि तक ले जायें। हाथ बंधे हुए आकाश की ओर सामान्य तनाव देते हुए उठा दें। इस स्थिति में ५ सैकण्ड रुकें, फिर श्वांस खींचते हुए सीधे हो जावें।

अब श्वांस खींचते हुए हाथ एड़ियों पर रखें, कमर और सीना जितना आगे, सामने की ओर निकाल सकें, निकालें। सिर यथाशक्ति पीछे की ओर झुका दें। आकाश की ओर देखें। इस स्थिति में ५ सैकिण्ड रुकें, (चित्र ३ ख II) फिर श्वांस छोड़ते हुए सीधे हो जायें। यह दोनों ही क्रियाएं इसी क्रम से तीन-तीन बार दुहरायें।

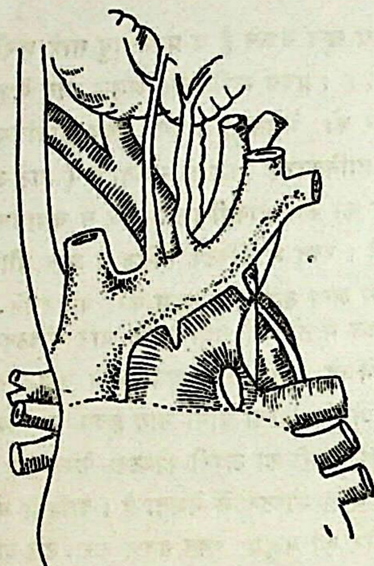
प्रस्तुत आसन योग उष्ट्रासन की स्थिति से मिलता जुलता है। इसका प्रभाव चयापचय क्रियाओं के लिये उत्तरदायी थायराइड ग्रंथि पर तथा रीढ़ की हड्डी की मांसपेशियों पर पड़ता है। साथ ही ऊपरी पाचन संस्थान को सक्रिय बनाने में सहयोग देता ही है। झुकी पीठ, गलत ढंग से चलने वालों तथा रीढ़ की हड्डी की विकृति वालों के लिये निवारण-उपचार की यह एक सर्वश्रेष्ठ आसन पद्धति है।

फेफड़ों व हृदय संस्थान के लिये

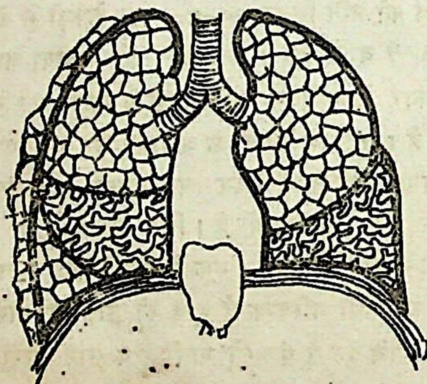
सर्वविदित है कि यह संस्थान सारे शरीर को शुद्ध रक्त भेजने के लिये उत्तरदायी है। श्वसन क्रिया जितनी गहरी होगी उतनी ही अधिक मात्रा में व तेजी से आक्सीजन रक्त में प्रवेश करेगी व विकारों से उत्पन्न कार्बनडायआक्साइड धकेल दी जायेगी। उथली सांस के कारण ही फेफड़े कमजोर बनते हैं व व्यक्ति दमा, क्रांनिक ब्रोकाइटिस व टी. बी. का रोगी होता चला जाता है। प्रदूषण के इस युग में प्राणायाम के साथ इस प्रकार के आसन नित्य किये जाना इसलिये भी जरूरी है कि २४ घण्टे में कुछ देर के लिये भी संस्थान को झकझोर दिया जाय,

तो बंद वायु कोष खुल सकते हैं व प्राणवायु सारे शरीर तक पहुंचने में सफल हो सकती है। हृदय रूपी पम्प अशुद्ध वायु फेफड़ों को भेजता व शुद्ध वायु शरीर को भेजता है। इस मुख्य कार्यालय का प्रमाद स्वयं उसके लिये भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है (हार्ट अटैक के रूप में) तथा सारे शरीर को कम आक्सीजन मिलने से चयापचयिक क्रिया भी प्रभावित होती है। रक्त में लैक्टिक एसिड व अन्य यौगिक अम्ल बढ़ते हैं, एसिडोसिस से अन्य ऊतकों व सूक्ष्म केन्द्र को हानि पहुंचती है।

हृदय मध्य में होता है तथा उसके चार कोष्ठक होते हैं। बायां भाग शुद्ध रक्त भेजने वाला तथा दायां भाग अशुद्ध रक्त ग्रहण करने वाला होता है। भेजने वाला बायां भाग हृदय का सबसे सशक्त भाग है—बायां वेण्ट्रीकल। इसी का ऊपरी कोष्ठक फेफड़ों से शुद्ध रक्त ग्रहण करता है व नीचे वाले कोष्ठक में भेजता है। दाहिनी ओर ऊपर वाला कोष्ठक सारे शरीर का अशुद्ध रक्त ग्रहण कर उसे दांये वेण्ट्रीकल में भेज देता है जहाँ से तुलनात्मक रूप से कम सशक्त यह माँसपेशी की थैली सारे रक्त को प्रति मिनट ७०–८० बार फेफड़ों में भेजती रहती है। (चित्र A 9 व A 10) यह पहले ही बताया जा चुका है कि फेफड़े किस प्रकार आक्सीजन वातावरण से ग्रहण कर रक्त शुद्धि में सहायक बनते हैं। हृदय व फेफड़ों के अलावा रीढ़ की हड्डी के दोनों तरफ में गलिया होते हैं जो हृदय चक्र बनाते हैं व इस संस्थान के स्नायु प्रवाह के लिये उत्तरदायी हैं। जिस कवच में ये सभी नाजुक अंग बन्द हैं, उसे थोरेसिक केज (एक पिंजड़ा) कहा जाता है। इसके ऊपरी भाग से धमनियाँ मस्तिष्क व हाथ को जाती है, पीछे वाले भाग से बड़ी धमनी नीचे पेट व पैर को जाती है व सारे शरीर का अशुद्ध रक्त महाशिरा से रीढ़ की हड्डी की दायीं ओर से आता है। इन सबका चालन-संचालन हृदय व फेफड़ों के सक्रिय बने रहने के लिये



A 9



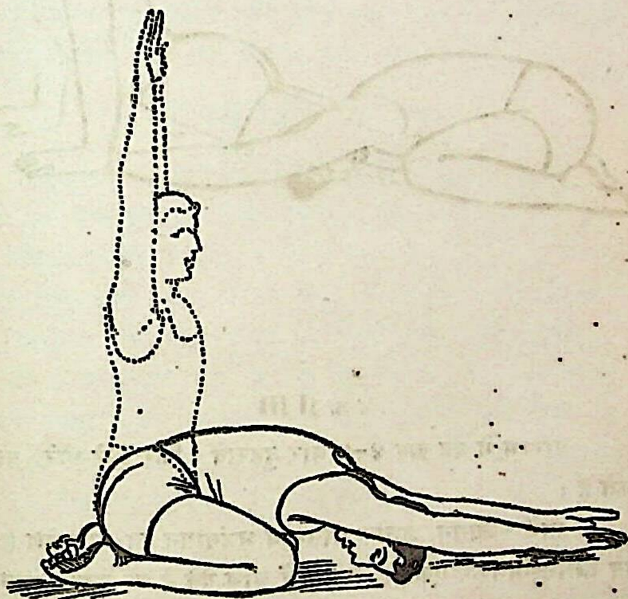
A 10

अनिवार्य है। इसीलिये आसन योग क्रम इस प्रकार होना चाहिए जो

सभी पर समान दबाव डाल सके, दूसरी ओर कुछ को आराम देकर इनके कार्य को प्रभावित भी न करे।

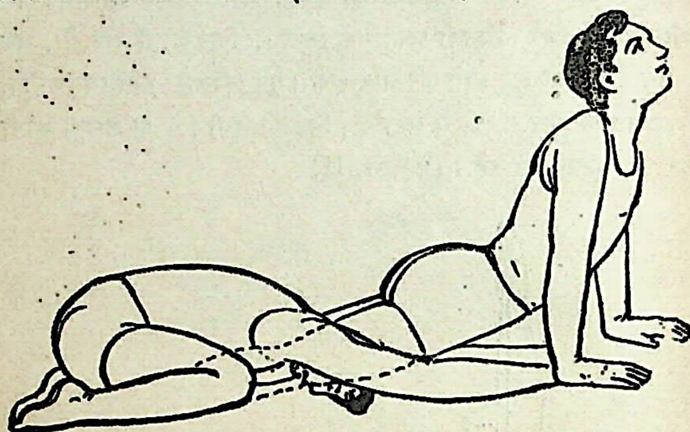
आसन योग क्रम ७

दोनों पैरों के पंजे और घुटने मिलाकर, घुटने मोड़कर पंजों पर बैठ जावें (वज्रासन की तरह)। हाथ ऊपर उठाकर श्वांस खींचते हुए कमर जितनी झुका सके झुकावें, फिर सीधी कर लें। अब श्वांस निकालते हुए आगे की ओर झुकें। पूरे झुककर हथेलियों सहित, कोहनी तक हाथ धरती से सटा दें। सिर भी जमीन से छू जाय। थोड़ी देर इसी स्थिति में रहें। (४ क I, II)



४ क I II

हथेलियाँ जमीन से सटाये रखें। कोहनियाँ उठाकर हाथों पर वजन लें। पंजे जमीन पर उसी स्थान पर रखे रहकर घुटने सीधे करते हुए शरीर को आगे बढ़ायें, और कोहनियां सीधी करते चलें (दण्ड लगाने की तरह)। कोंहनी सीधी हो जाने पर श्वांस खींचते हुए गर्दन ऊपर खीचें एवं रुकें। इसके बाद फिर घुटने मोड़ते हुए सामान्य स्थिति में आ जायें। (४ क II, III, I)।



४ क]I, III

प्रारम्भ में यह क्रम ४—५ बार दुहरावें। फिर धीरे-धीरे बढ़ा सकते हैं।

इसमें वज्रासन, शशांक आसन व भुजंगासन का समावेश है। तीन आसन मिलकर एक ही बार में वे लाभ देते हैं जो इनको अलग-अलग करने पर मिलते।

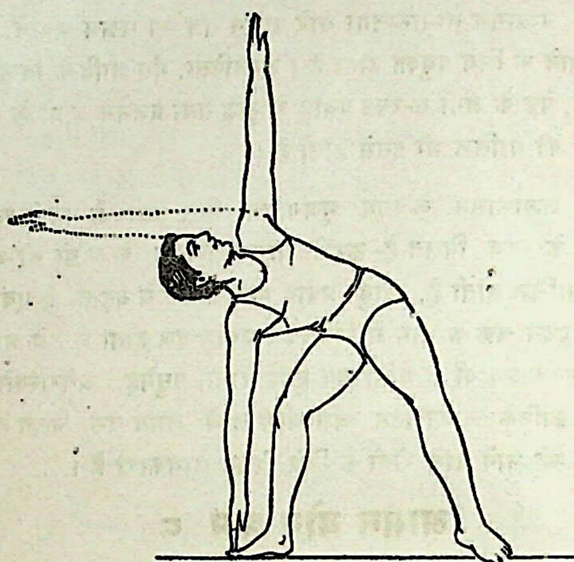
वज्रासन सामान्यतया सारे पाचन तंत्र को सक्षम बनाने, भोजन को पचाने के लिये प्रयुक्त होता है। अम्लपित्त, गैस आदि के विकार में आराम, पेडू के अंगों में-रक्त प्रवाह में वृद्धि तथा प्रजनन अंगों के स्नायु तन्तुओं की मालिश भी इससे होती है।

शशांकासन के साथ भुजंगासन मिल जाने से गहरी श्वांस-प्रश्वांस के लाभ मिलते हैं—ऊपरी पाचन संस्थान के अंगों की भली-भाँति मालिश होती है, स्नायु प्रवाह सारे शरीर में बढ़ता है एवं सूर्य चक्र व हृदय चक्र के भाग में विशेषकर प्रवाह तेज होता है। ये आसन आध्यात्मिक प्रयोगों के अतिरिक्त हृदय रोगों, मधुमेह, अथेरोस्क्लेरोसिस व क्रानिक बांकाइटिस जैसे जीर्ण लम्बे समय तक चलने वाले असाध्य कहे लाने वाले रोगों के लिये विशेष लाभकारी हैं।

आसन योग क्रम ८

सीधे खड़े हों, पैरों में अपने सामान्य कदम से डेढ़ गुना फासला रखें। दायां हाथ कुहनी से सीधा रखते हुए ऊपर उठायें, कान से सटा हुआ सीधा ऊपर खिंचा रहे। इस क्रिया में श्वांस खींचे। श्वांस निकालते हुए बिना आगे झुके बायीं ओर झुकें, बायां हाथ बायीं टाँग के साथ नीचे खिसकाते जावें। जितना झुक सकें, झुकें। अब श्वाँस खींचते हुए सीधे खड़े हों दायां हाथ ऊपर ही तना रहे (स्थिति ४ ख II की तरह) तदुपरांत श्वांस छोड़ते हुए बायां हाथ नीचे ले आवें। इसी क्रिया को बायां हाथ उठाकर दायीं ओर झुकते हुए दुहरायें। पूरा क्रम दोनों ओर झुकते हुए तीन बार दुहरायें। (४ ख I ii)

यह आसन त्रिकोणासन का ही एक स्वरूप है। इसमें से वह क्लिष्टता हटा दी गयी है जो सामान्य व्यक्तियों को होती है व झुक कर सिर घुटने से लगाने में कष्ट व अनावश्यक दबाव सहना पड़ता है।



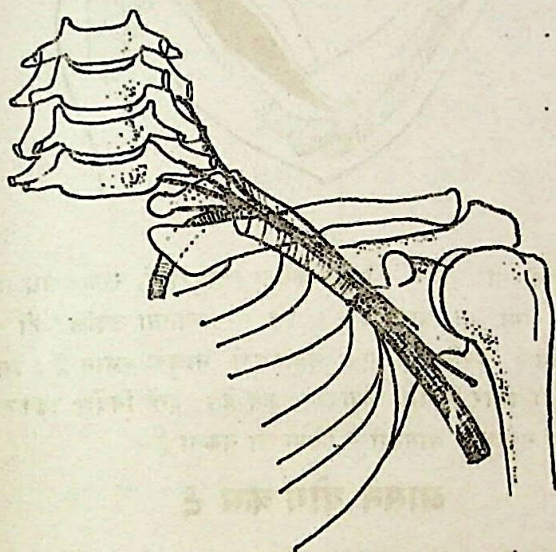
४ ख I II

यह आसन हर दृष्टि से श्वसन क्रिया को वढ़ाने वाला रक्त प्रवाह गतिमान करने वाला तथा इन सभी संस्थानों के लिये उत्तरदायी मांसपेशी तंत्र को मजबूत बनाने वाला है। थकान आदि में विशेष लाभ करता है, तुरंत एसिडोसिस मिटा कर सारे शरीर में प्राण वायु का संचार करता है। स्नायु संस्थान, सूक्ष्म रस स्रावी संस्थान, रक्त परि-वहन व श्वसन संस्थान की सम्मिश्रित व्यायाम प्रक्रिया का यह सर्व-श्रेष्ठ माध्यम है।



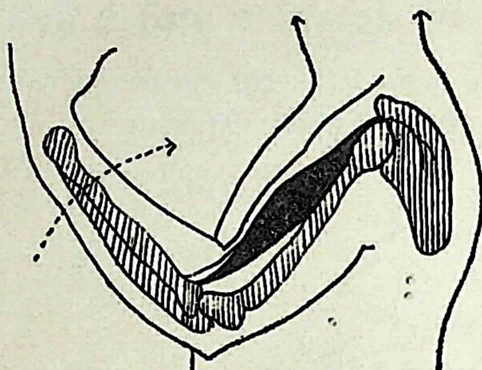
कंधे का जोड़ व हाथों के लिए

कंधे का जोड़ एक महत्वपूर्ण 'वॉल एवं सॉकेट' जोड़ है। एक ही जोड़ में ३ हड्डियों की संधियाँ तथा इसकी चारों ओर की कैप्सूल



A 11

सतह का फैलाव इसे एक महत्वपूर्ण जोड़ बनाता है। हाथ से ही सभी काम करते हैं। कलाकार, लेखक, श्रमिक, करीगर, चिकित्सक व शिल्पी यदि अपने इस जोड़ को समर्थ सक्षम न रखें तो यह जल्दी ही हाथ की क्रियाशीलता को सीमा बद्ध करने लगता है। महत्वपूर्ण धमनियाँ, शिराएँ, नसें गर्दन की हड्डी (क्लेवीकल) व शोल्डर ब्लेड (स्केपुला) के बीच से निकलती हैं। (चित्र A 11 व A 12) एक महत्वपूर्ण नाड़ियों का चक्र यहाँ होता होता है—ब्रेकियल प्लेक्सस।

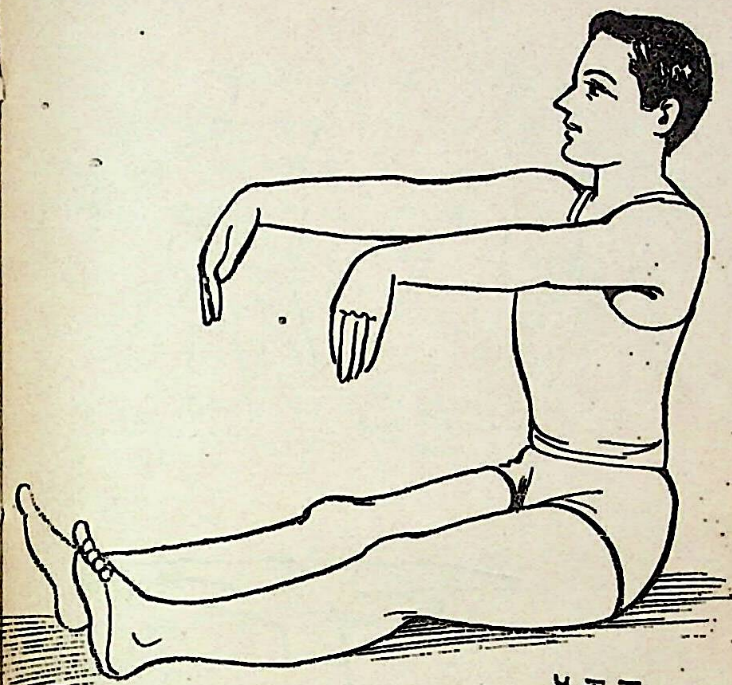


A 12

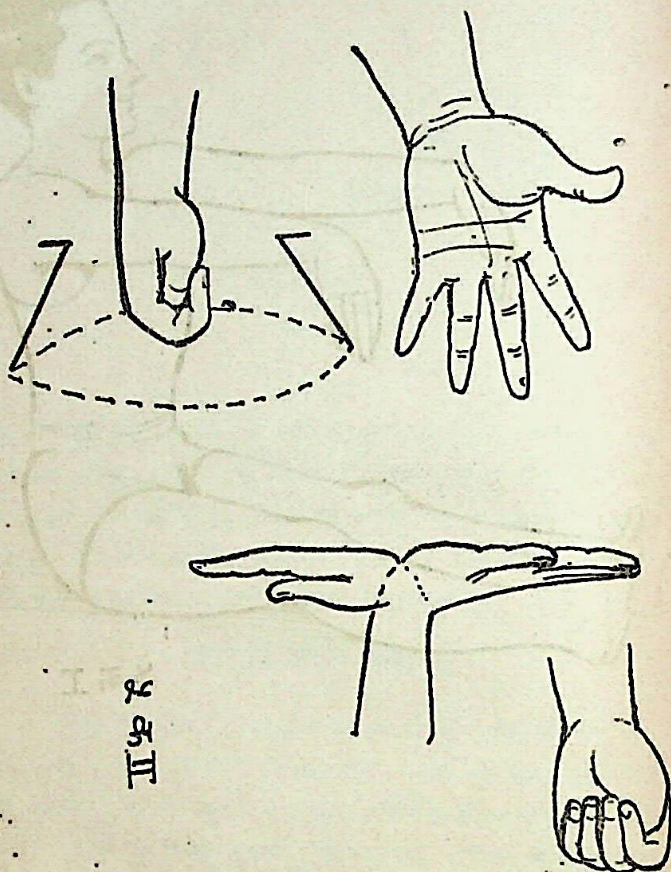
ऐसे में किसी भी प्रकार की निष्क्रियता स्नायुरोगों, रक्तावरोध तथा अन्यान्य रोगों को आमंत्रण है। इसे सामान्यतया उपेक्षित ही कर दिया जाता है जबकि यह एक महत्वपूर्ण नाजुक स्थान है। इसके लिए भी दो प्रकार के योग व्यायाम क्रम हैं। इन्हें निर्देश पढ़कर व चित्र द्वारा समझकर आसानी से किया जा सकता है।

आसन योग क्रम ६

सीधे बैठ जायें। दोनों हाथ सामने की ओर कंधों की सीध तक सीधे उठायें। हथेलियाँ नीचे की ओर रहें। पन्जों को सीधा तना हुआ रखें, उंगलियों के जोड़ मुड़ने न दें और कलाई से मोड़ते हुए पन्जे नीचे की ओर अधिक से अधिक झुकायें। फिर कलाई (रिस्ट) से मोड़ते हुए उसी प्रकार पन्जे जितने ऊपर की ओर मोड़े जा सकें, मोड़ें। (चित्र ५ क II) इस क्रिया को पाँच वार दुहरायं। यही क्रिया पुनः पन्जे फैला कर तथा मुट्ठी बाँधकर (५ क II) भी पाँच-पाँच वार दुहरायें। पुनः यह सारी क्रियाएं हाथ बगल में फैलाकर दुहरायें। यह क्रिया हाथों



५ क I



चित्र १८

से कन्धों तक अच्छी तरह सूक्ष्म मालिश कर देती है। स्थूल व्यायाम से भी यह उत्तम है क्योंकि इसमें सहज क्रम में वे मूवमेण्ट्स किये जाते हैं, जो कहीं दबाव नहीं डालते।

आसन योग क्रम १०

सीधे खड़े होकर या बैठकर दोनों हाथ कुहनियों से मोड़कर उंगलियाँ कन्धों से स्पर्श करें अब कन्धों का जोड़ घुमाते हुए कुहनियों को गोलाकार चलावें। चलाने में सामने ऊपर, पीछे, नीचे जितना



५ ख I

अधिक जा सकें, ले जाने का प्रयास करें। पहले एक दिशा में ५-६ वार घुमायें, फिर दिशा वदल कर पुनः ५-६ वार घुमायें (चित्र ५ ख

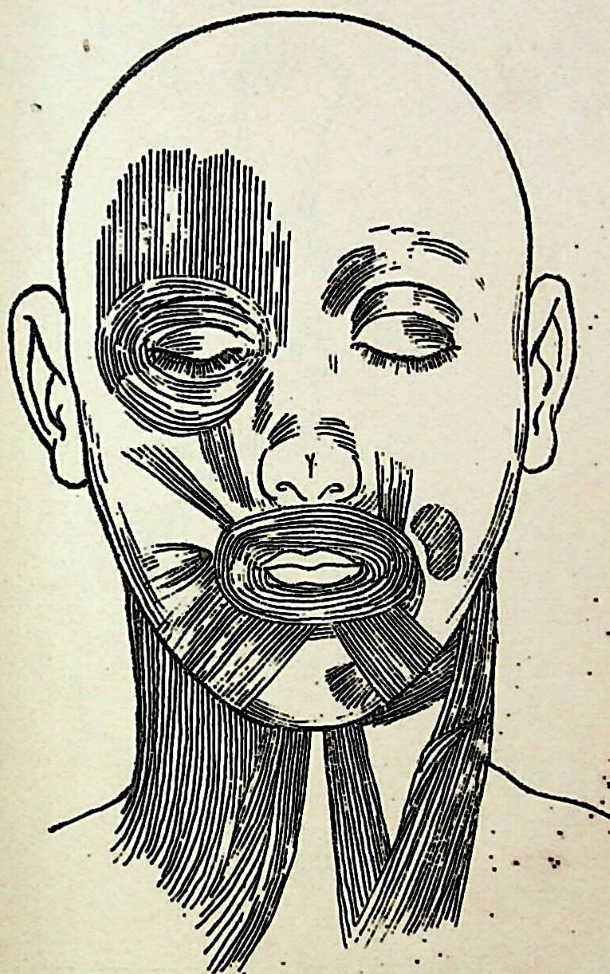


५ ख II

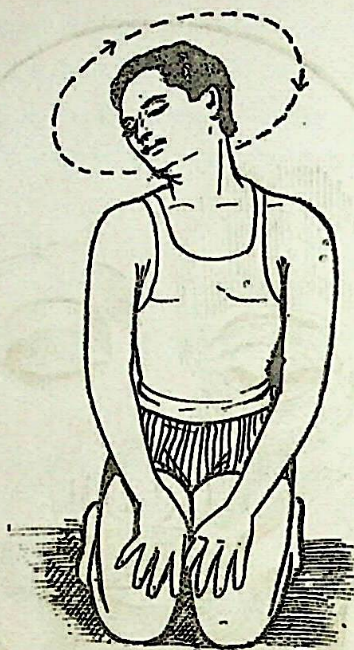
I II) इसे कई दिशाओं में करके सभी मांसपेशियों को क्रमिक रूप से श्रम व विराम दिया जाता रह सकता है । 'फ्राजन शोल्डर', गठिया रोग आदि के लिए व स्केलीनस सिण्ड्रोम, सर्वाइकल स्पांडिलाइटिस, रेनाड्स डिजी आदि में यह व्यायाम लाभ पहुँचाता है ।

गर्दन-चेहरे व आँखों के लिए

गर्दन में रीढ़ की हड्डी का वह भाग है, जिस पर खोपड़ी टिकी है । छोटी-छोटी कशेरुकाओं से मिलकर बने भाग को सुषुम्ना का महत्वपूर्ण ऊपरी भाग, सिम्पेथेटिक स्नायु फाइवर्स तथा चेहरे की माँस पेशियों की नाड़ियाँ होती हैं । गर्दन में पेराथायराइड व थायराइड ग्रन्थियाँ हैं । तथा वे धमनी तथा शिरायें हैं जो मस्तिष्क को रक्त भेजती हैं । इस स्थान का महत्व योग विज्ञान में अत्यधिक माना जाता है । चेहरे की माँस पेशियाँ व आँखें भावाभिव्यक्ति के लिए उत्तरदायी हैं । (चित्र A 13) सारे शरीर के व्यायाम-आसन आदि प्रचलित हैं पर चेहरे के मसल्स आदि के लिए कम ही योगवेत्ता लिखते अथवा बताते हैं । चेहरे का सौष्ठव व अभिव्यक्ति का सौन्दर्य भावनाओं के अतिरिक्त इस पर भी निर्भर है कि इस स्थान को स्वस्थ वनाने के लिये प्रयास किया गया या नहीं । माँस-पेशियों को उन्मुक्त स्नायु व रक्त प्रवाह मिलता रहे । इसके लिए ये आसन योग क्रम अनिवार्य हैं ।



A 13

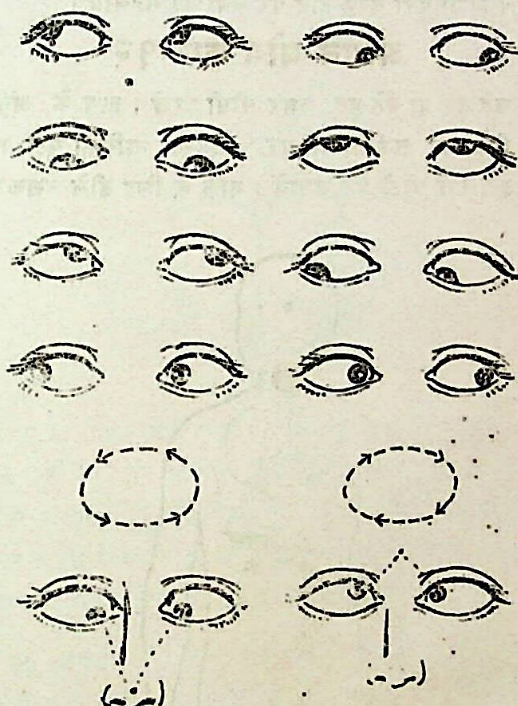


६ क I

आसन योग क्रम ११

सहज स्थिति में खड़े हों या बैठ जायें गर्दन सामने झुकायें, उसे क्रमशः दायीं ओर, पीछे, बायीं ओर घुमाते हुए पुनः सामने ले जावें।

अब पहले से उलटी दिशायें घुमायें। बदल-बदल कर दोनों दिशाओं में पाँच-पाँच बार घुमायें। व्यायाम पूरा होने पर गर्दन को हथेली से सहलायें। (चित्र ६ क I)



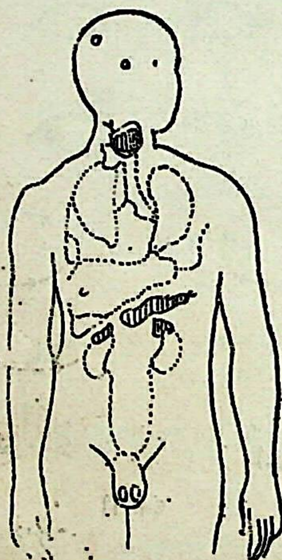
६क II

६क II

अब गर्दन स्थिर रखते हुए नेत्रों को (चित्र ६ क II) की तरह पाँच सौ बार चलायें। १. दायें-बांयें, २. ऊपर-नीचे, ३. तिरछा ४. तिरछा-दूसरे कोण में, ५. गोलाकार ६. गोलाकार दूसरी दिशा में, ७. नाक की ओर देखना, फिर सामने देखना, ८. भौंह देखना ९. क्रमशः भौंह और नाक देखना, १०. जोर लगाकर पलक बन्द करना-खोलना। क्रिया पूरी तरह होने पर नेत्रों को सहलायें।

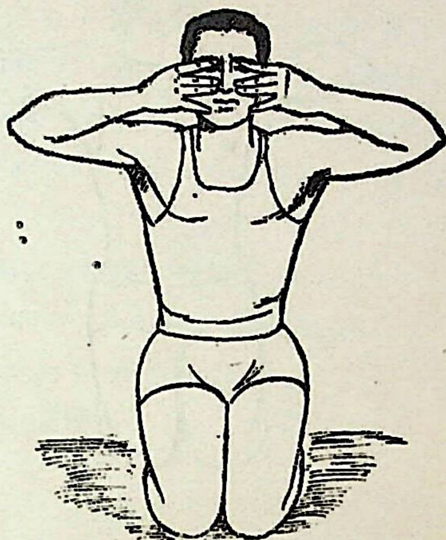
आसन योग क्रम १२

खड़े हुए या बैठे हुए, कमर सीधी रखें। हाथ के अंगूठों को कान के छिद्रों पर, तर्जनी नेत्रों पर, मध्यमा नासिका पुटों पर, तथा शेष दो उंगलियाँ ओठों पर जमायें। नाक के छिद्र ढीले रखकर गहरी



A 14

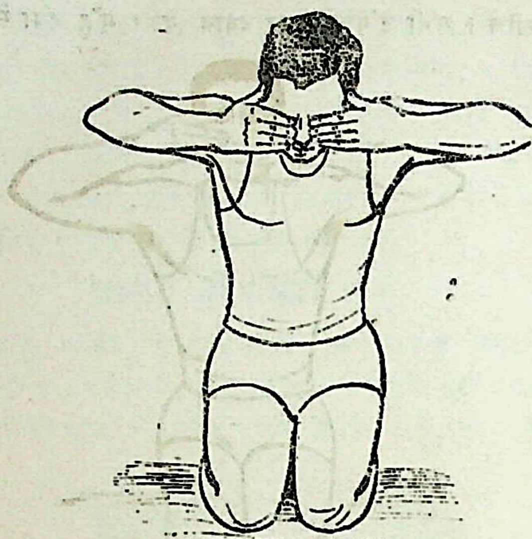
श्वास खींचें। सभी उंगलियों पर दवाब देकर मुँहु हवा से फुलायें।



६ ख I

(चित्र ६ ख I)। अब ठोड़ी कन्ठ के गड्ढे में लगाकर अन्दर से हवा का दवाव पूरे चेहरे पर आने दें, उंगलियों का दवाव बनाये रखें। आसानी से जितना रुक सकें, रुकें। फिर सिर उठाकर उंगलियों का दवाव कम करके श्वांस बाहर छोड़ दें। यह पूरी क्रिया ३ बार दुहरायें। बाद में चेहरे को सूखी हथेली से मालिस दें।

यह आसन योग क्रम थाइराइड ग्रन्थि को उत्तेजित कर रसस्राव को पूरे शरीर में पहुँचाता है—शरीर में ताजगी लाता व थकान का निवारण करता है। चेहरे की प्रफुल्लता व कांति बढ़ाना हर व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। व्यक्तित्ववान ही आगे बढ़ते व श्रेय पाते हैं। यदि यह क्रम नियमित रूप से किया जाता रहे तो मात्र



६ ख]1

शरीरपरक ही नहीं, यह क्रिया भावनाओं से जुड़कर साधक के समग्र व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाती है।

इस विवेचन में प्रचलित व नवीन अनुसंधान द्वारा खोजे गये आसन-व्यायामों का विज्ञान सम्मत तत्वज्ञान प्रस्तुत किया गया। इन्हें सामान्य नियमों का पालन कर हर व्यक्ति सहज ही नियमित रूप से करते व लाभन्वित होते रह सकते हैं। रोग निवारण ही नहीं, स्वास्थ्य संवर्धन भी एक उद्देश्य है। जैसा कि चित्र A 14 में बताया गया है, हमारा सूक्ष्म शरीर ऊपर से नीचे तक पीनियल, पीट्यूटरी, थायरायड, पेराथायराइड, एड्रीनल्स, गोनेड्स व इनके अतिरिक्त भी कई प्रकार के एन्जाइम्स-न्यूरोहारमोन्स व मिडीएटर्स से भरा पड़ा है। इस संस्थान को उत्तेजित करने के लिये छहों प्रकार के वर्गों के १२

आसन योग अभ्यासों में से बदल-बदल कर कोई भी अपनाये जा सकते हैं। सामान्यतया ये रोजमर्रा के कामों में लगे व्यक्ति में निर्धा-मात्रा से कम ही स्राव करते हैं। इन्हें उत्तेजन देना ही आसन, मुद्रा, बंध, प्राणायाम प्रक्रियाओं का मूल प्रयोजन रहा है। परन्तु सर्वसुगम अभ्यास कैसे बन पड़े—हर कोई किस प्रकार इन्हें करें—यह सोचकर ही वर्तमान में ये बारह क्रम" सुझाये जा रहे हैं। साधना संबंधी क्रियाओं को इनमें नहीं समाविष्ट किया गया क्योंकि वह विषय अलग है। यहाँ तो स्वास्थ्य संवर्धन को ही प्रधान माना गया है एवं उसी दृष्टि से निधारण किये गये हैं।

षष्ठम् अध्याय

मालिश : एक उपयोगी व्यायाम

स्वास्थ्य-निर्माण में मालिश एक अत्यन्त उपयोगी व्यायाम है। इससे स्वस्थ जीवन जीने के लिए ऐसी ही मदद मिलती है। जैसी आहार, विश्राम, उपवास व टहलने आदि से मिलती है। आयुर्वेद में कहा गया है :—

वातव्याधिं हरति कुरुते सर्वगोत्रेषु पुष्टिम्।
दृष्टिं मन्दामपि वितानुतेवैवतेयोयां च॥
निद्रां सौख्यं जनयति जरां हंति शक्तिविधत्ते।
धत्तेकान्ति कनक सदृशीं नित्यमभ्यंग योगात्॥

अर्थात्—"नियमित रूप से तेलमालिश करने से वात रोग दूर होता है। अङ्ग पुष्ट होते हैं, दृष्टि तेज होती है, निद्रा और सुख—उत्पन्न होता है, बृद्धावस्था दूर होती है, शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है और शरीर का वर्ण सोने के समान हो जाता है।"

मालिश का प्रमुख कार्य है रक्त संचार में तेजी लाना। शरीर में रुधिर संचार का कार्य हृदय से सम्पन्न होता है। स्वच्छ खून धमनियों द्वारा सारे शरीर में दौड़ता है और अशुद्ध-रक्त-वाहिनी शिराओं द्वारा अस्वच्छ रुधिर हृदय में एकत्रित होता है। यहां उसकी सफाई होती है। खून जब पर्याप्त मात्रा में हृदय में नहीं पहुँचता तब तक

सफाई की प्रक्रिया तेज नही होती। शिरायें शिथिल बनी रहती हैं। किन्तु मालिश से इन शिराओं में गर्मी उत्पन्न होती है और तेजी से रक्त संचार होने लगता है। हृदय की गति भी उसी अनुपात से बढ़ जाती है और सारे शरीर में स्वच्छ रुधिर लहलहाने लगता है। मालिश करने का अर्थ है रक्त- शुद्धि के कार्य में नाड़ियों की मदद करना।

मालिश एक ऐसी कला है जिससे शरीर के सम्पूर्ण अवयवों में रक्ति-अभिसरण की क्रिया तेजी से सम्पन्न होती है। जिन स्थानों में रक्त जमा हुआ होता है या हल्की गुत्थियाँ पड़ जाती हैं उसे पिघला कर पतला बनाने का काम मालिश से आसानी से पूरा हो जाता है। इससे रक्तवाहिनी नाड़ियों को विवश होकर कार्य में तेजी से जुट जाना पड़ता है। रक्त पतला हो जाने से फेफड़े भी आसानी से दूषित रक्त-विकार दूर कर देते हैं। यह गन्दगी मल-मूत्र और पसीने द्वारा स्वतः बाहर निकल जाती है। साथ ही शरीर का हल्का व्यायाम हो जाने से हलकापन चैतन्यता एवं स्फूर्ति बढ़ जाती है। इससे फेफड़े, जिगर, तिल्ली, छोड़ी व बड़ी आँतें, गले की ग्रन्थियाँ, रीढ़ के चक्रों की बीमारी खराबी व कमजोरी दूर हो जाती हैं।

शारीरिक अङ्गों में क्रियाशीलता पाचनशक्ति, रसनिःसरण पचे हुए रस का शरीर में शोषण तथा सफाई के कार्यों में तेजी लाने का सर्वोत्तम उपाय मालिश है। धमनी और शिराओं की आकुञ्चन क्रिया में तेजी आने से रक्त चाप बढ़ जाता है। इससे रक्त के श्वेत जीवाणु सशक्त होते हैं जो किसी भी रोग के कीटाणुओं का मुकाबला करने में सफल होते हैं। रोग-निरोधक शक्ति बढ़ती है। और सम्पूर्ण रुधिर विकार दूर हो जाते हैं।

मनुष्य के सारे शरीर में लगभग ३४७ पेशियाँ होती हैं। इसमें से ऊपरी सतह वाली लगभग ४४ पेशियाँ होती हैं। दूसरे व्यायामों से ऊपरी सतह की माँस पेशियों में तो हलचल हो जाती है किन्तु आन्तरिक माँस पेशियों को लाभ और स्नेह सिंचन पहुँचाने के लिए गहरी मालिश की आवश्यकता होती है। इससे निष्क्रय पड़े अंगों में क्रियाशीलता उत्पन्न होती है और ये माँस पेशियाँ बढ़ने लगती हैं। जिनमें अधिक मोटापा या भद्दापन आ जाता है, वे सुड़ौल बनने लगती हैं।

मांसपेशियों की मालिश से उनमें शक्ति आती है। थकान दूर होती है। मानसिक या शारीरिक श्रम से उत्पन्न थकावट पैदा करने वाला दूषित तत्व जो इनमें जमा हो जाता है वह दूर हो जाता है और स्फूर्ति बढ़ जाती है। इनमें वृद्धि व विकास के साथ-साथ ही बोझा उठाने व कार्य करने की शक्ति जागृत होती है।

शरीर की स्नायु प्रणाली पर मालिश का बड़ा महत्वपूर्ण असर पड़ता है। इनमें मालिश से उत्तेजना पैदा होती है जिससे थकावट दूर होकर आराम की स्थिति आती है। जिन स्नायुओं में किसी प्रकार का दर्द होता हो उनकी मालिश करने से दर्द कम हो जाता है।

सरसों का तेल इस क्रिया के लिए अधिक उपयुक्त होता है। रोग नाशक शक्ति होने के साथ ही इससे शरीर को शीतलता व चिकनाई मिलती है। गाँठें परिष्ट होती हैं और चर्म विकार दूर होते हैं। शुद्ध घानी का तेल मिल के तेल की अपेक्षा अधिक लाभदायक होता है। जिन्हें मँहगा न पड़े उन्हें नारियल का तेल इस्तेमाल करना चाहिये। नारियल का वृक्ष प्रायः सभी पेड़ों से अधिक ऊँचा होता है अतः वह सूर्य किरणों से व्यापक शक्ति खींच लेता है। इसमें एक रेडियम नामक विशेष प्रकार का तत्व होता है। जो शारीरिक धातु को पुष्ट करने में लवण का कार्य करता है। स्नायु मण्डल रक्त-वाहिनी नाड़ियों, अंत-

ड़ियों तथा दूसरे शारीरिक अवयवों की उष्णता को हटाकर शीतलता पैदा करता है। नैसर्गिक विटामिन प्राप्त होता है। कुछ बीमारियों में जैसे लकवा वात आदि में राई या तिल का तेल भी इस्तेमाल करते हैं। रंगीन काँच की बोतलों में नारियल का तेल भर कर कुछ दिन धूप में रखने से वह भी इन रोगों में इस्तेमाल करने योग्य हो जाता है।

मालिश के प्रमुख तरीके ये हैं—(१) घर्षण (२) दण्डन (३) थपकी (४) कम्पन और (५) सन्धि प्रसारण। इनका प्रयोग, अवस्था स्थिति और आवश्यकता के मुताबिक किया जाता है। शरीर के ऊपरी सतह पर समान दवाव से गदेलियों की सहायता से रगड़ने या मालिश करने को घर्षण कहते हैं। इससे रक्त में गर्मी पैदा करने के लिये तेजी से हाथ चलाना पड़ता है। यह गति प्रति मिनट तीस से लेकर १८० तक होनी चाहिये और तब तक किया जाना चाहिये जब तक रोम-कूपों से सारे तेल का शोषण नहीं हो जाता। केवल तेल चुपड़ लेना या उसे ऊपर-ऊपर ही रगड़ते रहना लाभदायक नहीं होता। इस क्रिया में यह ध्यान रखना चाहिये कि हाथों की गति हर वार हृदय की ओर हो जैसे यदि पाँव का घर्षण कर रहे हैं तो पिण्डुली से मोठी जंघाओं की ओर हाथ ले जाना चाहिये। इसी प्रकार वारी-वारी से हर अंग की मालिश करने से चर्म विकार दूर होते हैं, त्वचा स्वच्छ कोमल व स्निग्ध हो जाती है और दूसरे अवयवों के भी दूषित पदार्थ वाहर निकल जाते हैं।

शरीर के विभिन्न स्थानों की मालिश करने से कई प्रकार के लाभ होते हैं। पेडू की मालिश करने में कब्ज की शिकायत दूर होती है। सन्धि वात में जोड़ों की मालिश करते हैं। चर्वी इकट्ठा हुए स्थान की मालिश करने से मोटापा दूर होता है और शरीर सुडौल वनता

है। सिर की मालिश अनिद्रा को भगाती है। मसूड़ों की घर्षण क्रिया भी एक प्रकार की मालिश ही है इसमे दाँत मजबूत होते हैं। मधुमेह के रोगियों को मालिश कराने से बेकार शर्करा जल जाती है और उसका पेशाब से निकलना वन्द हो जाता है। पक्षाघात, अपच, साय-टिका, पथरी, लीवर की दुर्बलता, डिम्बाशय, प्लूरिस, तथा हृदय की दुर्बलता के लिए शरीर की नियमित मालिश करनी चाहिये, इससे तात्कालित लाभ मिलता है।

मालिश करने के लिये जिन्हें साधन व समय न मिले उन्हें स्नान करते समय शरीर के सभी अङ्गों को खूब मल कर धोना चाहिये। रगड़ने की क्रिया मालिश जैसी ही—छोरों से हृदय की ओर को हो तो स्नान से भी वही लाभ मिलता है जो किसी तेल या उबटन से प्राप्त होता है। स्नान करने के उपरान्त किसी मोटे तौलिये से सारे शरीर को रगड़ कर पोंछ डालना चाहिये इससे रक्त के संचार में तेजी तथा सजीवता उत्पन्न होती है।

मालिश करने के बाद थोड़ी देर तक हलकी धूप में बैठना स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होता है। दर्द या चोट की मालिश में तो सेंकने की क्रिया भी चलाते हैं। इससे खून में गर्मी पैदा होती है और दूषित पदार्थ निकल जाते हैं। मालिश से उत्पन्न पसीना व तेल आदि के सम्मिश्रण से उत्पन्न गन्दगी तथा रोमकूपों की सफाई के लिये साबुन या मुल्तानी मिट्टी से स्नान कर लेना बड़ा लाभदायक होता है। इससे शरीर को शीतलता प्राप्त होती है।

धनी-निर्धन, रोगी या स्वस्थ, बालक, वृद्ध या नवयुवक सभी मालिश से अपना स्वास्थ्य सुधार सकते या स्थिर बनाये रख सकते हैं। इसमें किसी प्रकार हानि की आशंका नहीं है। नियमित रूप से प्रतिदिन तेल मालिश करना स्वास्थ्य के लिए अतीव हितकारी होता है।

मालिश के नियम

साधारणतः मालिश को हल्के व्यायामों में गिना जाता है। जो व्यक्ति अपने प्रयत्न से अवयवों को उठाने-गिराने, दबाने, सिकोड़ने, मरोड़ने वाले व्यायाम करने की स्थिति में नहीं है, उनके लिए दूसरों की सहायता से अंग-संचालन कर लेने-स्वयं चुपचाप पड़े रहने से भी बहुत हद तक व्यायाम का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

इसके अतिरिक्त मालिश एक उपचार भी है। जकड़न या दर्द वाले स्थानों में उसका उपयोग होता है। थकान उतारने में, लम्बी बीमारी या प्रसव की दुर्बलता उतारने में उसकी बहुत उपयोगिता है। इस कला के निष्णात व्यक्ति भी बहुत जगह मिल जाते हैं। न मिलें तो स्वयं या मित्रों की सहायता से भी तनिक सावधानी बरतने पर वह प्रक्रिया भली प्रकार सम्पन्न होती रह सकती है।

मालिश करते या कराते समय कुछ बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए। मालिश करने वाले की मनः स्थिति एवं स्वभाव-चरित्र का कराने वाले पर सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है। इसलिए करने वाला—चरित्रवान् तथा स्वस्थ मनः स्थिति का हो। विशेषतया करते समय उसकी मनोदशा क्रोध आदि आवेशों से ग्रस्त न हो। उसके मन में कराने वाले के प्रति कल्याण भावना शुभेच्छा रहे। साथ ही कराने वाले का चिन्तन यह रहना चाहिए कि यह मात्र अङ्ग संचालन व्यायाम ही नहीं हो रहा है। उसे एक विशेष प्रकार की चिकित्सा उपचार एवं स्वास्थ्य संवर्धन प्रयोग द्वारा नीरोग बलिष्ठ बनाया जा रहा है। इस प्रकार की संकल्प शक्ति साथ में जुड़ी रहने से अतिरिक्त लाभ होता है।

मालिश करने-कराने का स्थान स्वच्छ, खुला, प्रकाश एवं धूप के आवागमन वाला होना चाहिए जिसं चटाई या तखत पर मालिश

करनी है वह भी स्वच्छ हो। मालिश कराने वाले अंगों को तानकर न रखें वरह पूरी तरस शिथिल कर दें। मालिश आमतौर से नीचे पैरों की ओर से शिर की ओर की जाती है। हृदय को लक्ष्य रखा जाता है। सिर व कन्धे से मालिश करने पर ऊपर से नीचे की ओर करते हैं।

मालिश हलके-हलके हाथ से की जाय। मांसपेशियों का तथा रक्त नलिकाओं का रक्त संचालन ही लक्ष्य रहे। पहलवानों की तरह दवाव डालने वाली कड़ी मालिश सर्व साधारण के लिए उपयोगी नहीं है। मालिश की अवधि सामान्यतया एक घन्टा मानी जाती है। इतनी अवधि में ही सभी अंग प्रत्यंगों से निपट लेना चाहिए। सरसों, नारियल या तिल्ली का तेल प्रयुक्त किया जाय।

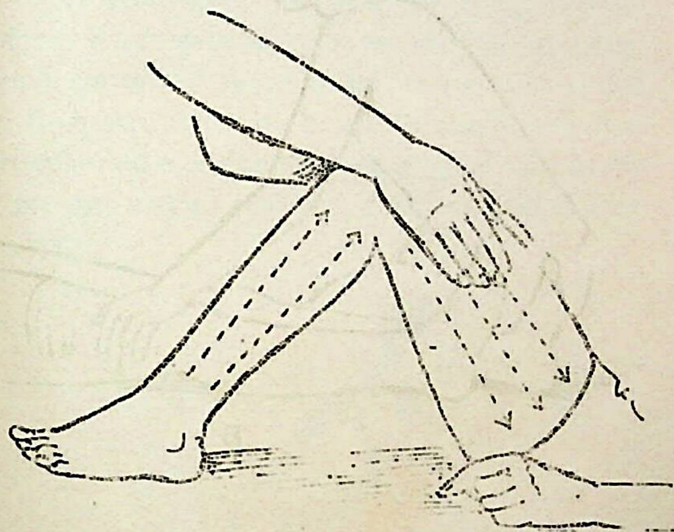
मालिश के वाद गुनगुने गर्म पानी से स्नान किया जाय। इससे चिकनाई छूट जाती है साथ ही पसीने के छेद खुलते हैं, स्नान के साथ-साथ खुरदरे तौलिये से रगड़-रगड़ कर शरीर को सुखाया पोंछा जाय प्रकान्तर से इस प्रकार की तौलिया रगड़ाई भी मालिश का ही एक अंग है। और वह भी उसी प्रकार लाभदायक है, कराने वाले-साथ-साथ गहरे-गहरे साँस भी लेता रहे। दवाव के कारण साँस रोकने का प्रयत्न न करें।

भरे पेट मालिश नहीं करनी चाहिए। इसके लिए प्रातःकाल का समय सर्वोत्तम है। दूध-चाय आदि हल्का पेय ले लेने में हर्ज नहीं। एक व्यक्ति की मालिश समाप्त करने और दूसरे की आरम्भ करने के मध्य में सावुन से अच्छी तरह हाथ धो लेने चाहिए ताकि किसी की शारीरिक-मानसिक छूत किसी को न लगे।

गर्भवती स्त्रियों को मालिश उनके पेट-पेड़ू को छोड़कर शरीर के अन्य अवयवों की ही करनी चाहिए स्तनों पर तनिक भी दवाव न

पड़े। जड़ों के नीचे तक दूध की नसों से उसे दूर ही रखना चाहिए। महिलाओं की मालिश महिलाएँ ही करें। छोटे बच्चों के लिए तो और भी हल्का हाथ रखना चाहिए। उनके अंगों को गुदगुदाना ही पर्याप्त है। मालिश के विशेष कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं :—

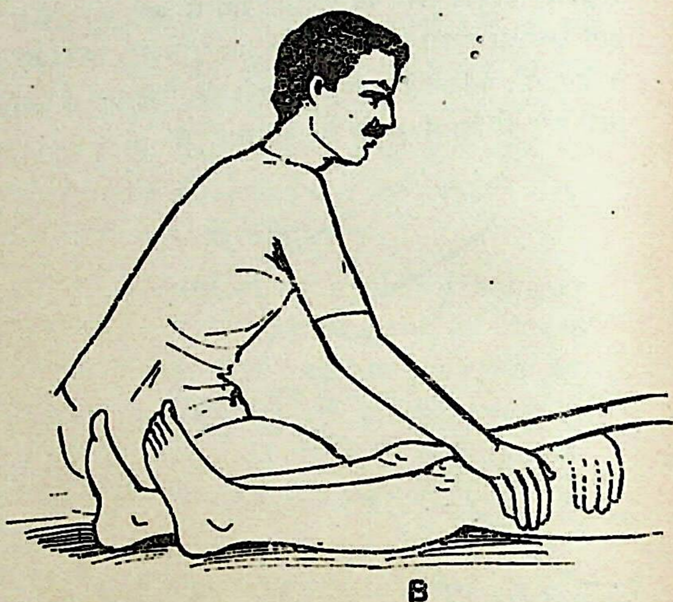
१. सामान्य मालिश—यह व्यायाम का एक अंग है। सभी अङ्गों को नीचे से ऊपर एवं दायें से बाँयें ले जाते समय थोड़ा कड़ा हाथ रखा जा सकता सकता है लौटते समय दवाव हल्का कर लेना चाहिए, तेल मालिश के साथ-साथ अंगों को सिकोड़ना फैलाना तथा सिकोड़ना फुलाना भी अच्छा है। देखें चित्र 'A'



A

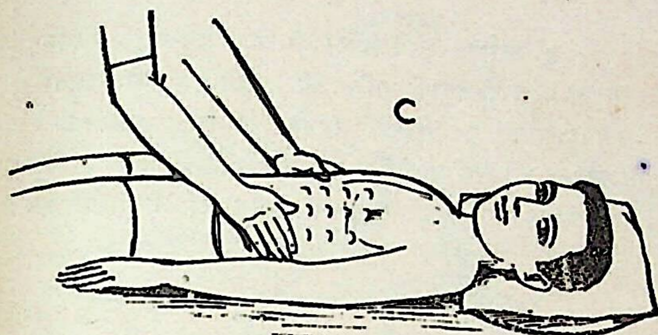
२. ताल थपकी—मालिश करने वाला हाथ ढीला रखे। हलके हाथ से मांसपेशियों को उत्तेजना देने वाली थपकी देते हुए पैर से हृदय की ओर और शिर से हृदय की ओर वढ़ा जाता है। पेट पर

करनी हो तो दांये से बांई ओर चक्राकार करना चाहिए। वापिस लौटाना नहीं चाहिए। चक्र समाप्त होने पर नया आरम्भ करना हो तो हाथ उठाकर हर बार नये सिरे से आरम्भ करें। देखें चित्र 'B'

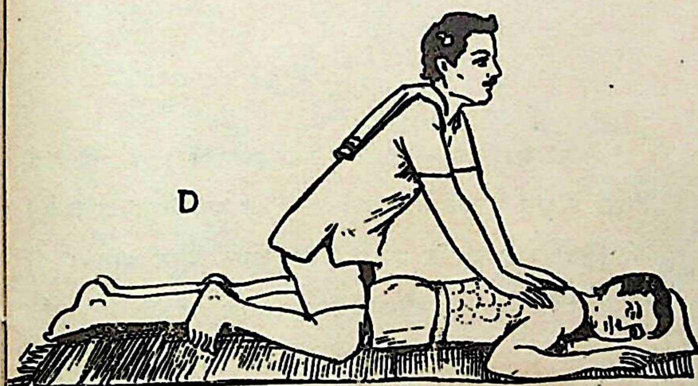


B

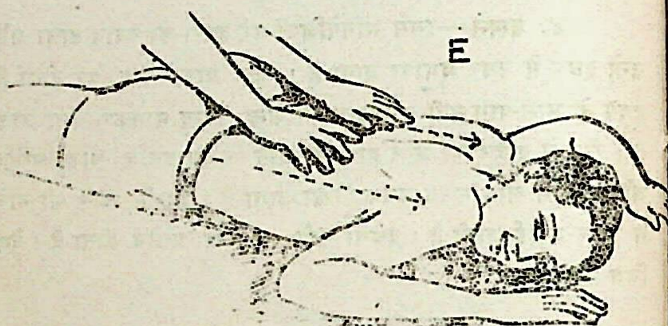
३. मसलना—चिकोटी काटने की तरह थोड़े-थोड़े स्थान को, दबा-दबा कर इसे पूरा किया जाता है। इसमें अंगूठे और उंगलियों का प्रयोग होता है। देखें चित्र 'C'



४. दलन—इससे माँसपेशियों पर हाथों का दबाव डाला और उन्हें इधर से उधर घुमाया जाता है। यह प्रायः पाठ पर होता है, हृदय के आस-पास नहीं। मेरुदन्ड को केन्द्र विन्दु मानकर चला जाता है। रीढ़ से बाहर की ओर हाथ ले जाते समय दबाव थोड़ा अधिक और वापिस लाते समय हलका रखा जाता है। इसकी चाल भी नीचे से ऊपर बढ़ाई जाती है। हथेली पन्जे का पूरा प्रयोग होता है। देखें चित्र 'D'

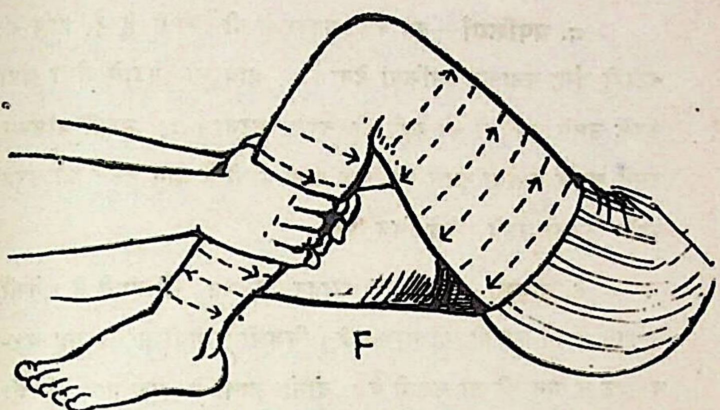


५. घर्षण—इसमें घिसने की क्रिया प्रमुख है। घिसना अर्थात् रगड़ना। इसे पहलवानी मालिश भी कहते हैं। जोर इतना तो नहीं लगाना चाहिए, पर धीरे-धीरे रगड़ने की क्रिया प्रायः उसी प्रकार सम्पन्न करनी चाहिए। जैसा कि अखाड़ों में की जाती है। हृदय, पे जैसे कोमल स्थानों पर इसका कम प्रयोग करें, जोड़ों पर इस प्रयो को विशेष रूप से केन्द्रित करें। देखें चित्र 'E'

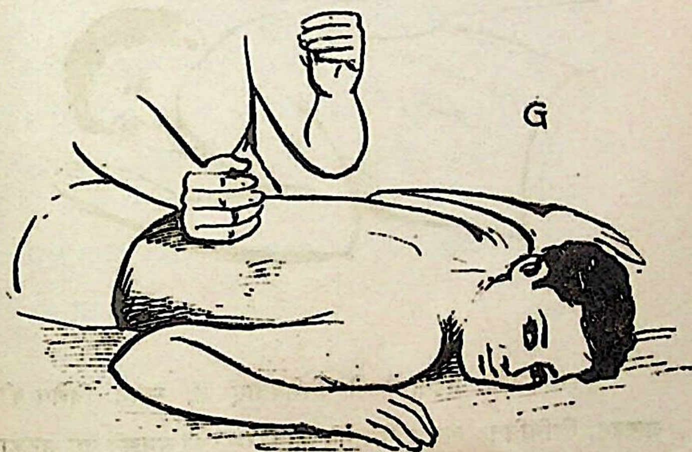


६. मरोड़ना—यह क्रिया मात्र हाथ पैरों पर की जाती है गोलाई में दाएँ से बाँयें और बाँयें से दाहिने इसे किया जाता है। य ध्यान रखा जाता है कि मरोड़ने का दबाव माँस पेशियों तक ही सीमित रहे। हड्डियों को-विशेषतया उसके जोड़ों को प्रभावित न करें। कंधों पर भी उसका प्रयोग किया जा सकता है और कूल्हे पृष्ठ भाग पर भी। अन्यत्र इसका प्रयोग वर्जित है। देखें चित्र 'F' कूल्हे के

पृष्ठ भाग पर भी। अन्यत्र इसका प्रयोग वर्जित है। देखें चित्र 'F'



७. झकझोरना—इसमें दवाया नहीं हिलाया जाता है। ढीली मांसपेशियों वाले वृद्ध जनों के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है, इससे शिथिलता दूर होती है और कड़ापन आता है ।



८. **थपकियाँ**—यह कई प्रकार से दी जाती है १. हाथ को कटोरी जैसा बनाकर थपकियां देना। २. हाथ को गड़ासे जैसा खड़ा करके उससे अवयवों को कुट्टी की तरह कूटना। ३. मुट्ठी बाँधकर उससे खरल में दवा कूटने की तरह दोनों हाथों से धान कूटने की तरह प्रयोग करना आदि। देखें चित्र 'G'

९. **कम्पन**—इसमें थर थराहट उत्पन्न की जाती है। तेजी से हाथ चलने पर ही यह सम्भव है। विजली मशीनों से भी यह थर-थराहट उत्पन्न की जा सकती है। दोनो हाथों से एक साथ इसे भी किया जा सकता है। देखें चित्र 'H'



इन सबकी अपनी-अपनी विशेषताएं हैं, स्थान विशेष की जकड़न, शिथिलिता, कमजोरी आदि के कारणों को समझते हुए उनका प्रयोग किया जा सकता है। उसके लिये किसी शरीर शास्त्री का परा-

मर्श आवश्यक है किन्तु यदि साधारणतः व्यायाम प्रक्रिया सम्पन्न करने के लिए ही इसे करना हो तो भिन्नता का आनन्द भी आता है और एक प्रयोग में जो कम रह गयी थी वह दूसरे से पूरी हो जाती जाती है। थोड़ी-थोड़ी देर इनमें से कइयों का-जो सुविधाजनक प्रतीत हो उनका प्रयोग किया जा सकता है। रोग विशेष-कारण विशेष में ही उपरोक्त मालिशों में से किसी एक का चुनाव करना पड़ता है और करने वाले को उसका विशेष रूप से अभ्यास करना पड़ता है।

उपरोक्त उल्लेख ऐसे हैं जिनमें करने वाला निष्क्रिय पड़ा रहता है और करने वाले को कलात्मक ढंग से उनका हल्का भारी-देर तक या थोड़ी-थोड़ी देर अपने अनुभव अथवा अनुभवों के निर्देशन पर प्रयोग करने पड़ते हैं। इनमें करने वाले की सहायता आवश्यक है किन्तु कई वार स्थिति भिन्न होती है। करने वाला मिलता नहीं और शरीर भी इतना दुर्बल नहीं होता कि अपने हाथ अपनी मालिश न बन पड़े। ऐसी दशा में स्वयं भी यह प्रयोग अपने आप स्नान से पूर्व दैनिक व्यायाम की तरह चलाया जा सकता है, इनमें कई प्रकार के प्रयोगों की आवश्यकता नहीं। सामान्य रीति से व्यायाम शालाओं में अपनाई जाने वाली पद्धति के अनुसार अपनी आवश्यकता स्वयमेव पूरी की जा सकती है।



सप्तम अध्याय



व्यायाम की कुछ अन्य उपयोगी धाराएँ

पिछले पृष्ठों पर व्याथाम के तहत्व, दर्शन और योग व्यायाम की विशिष्ट शृंखला पर प्रकाश डाला गया है। प्रतिपादनों के आधार पर हर व्यक्ति व्यायाम की प्रेरणा प्राप्त करने के साथ-साथ प्रस्तावित योग व्यायामों का लाभ उठा सकता है। प्रस्तावित शृंखला अपने आपमें सर्वाङ्गपूर्ण भी है और सर्वसुलभ भी। इसे जो भी अपनायेगा निःसन्देह लाभान्वित होगा।

फिर भी यहाँ व्यायाम की कुछ अन्य उपयोगी पद्धतियों की भी चर्चा की जाती है। मनुष्य का मन बड़ा बिचित्र है। उपयोगी से उपयोगी वस्तु को वह इसीलिए छोड़ देता है कि वह अपनी परिस्थितियों के अनुकूल नहीं। बहुत बार इस तर्क में थोड़ा बहुत वजन भी होता है, परन्तु बहुधा यह तर्क थोथा ही होता है। उसके पीछे अपना आलस्य और मनमौजीपन ही होता है। जो व्यायाम का महत्व समझ लें वे किसी न किसी रूप में उसे जीवन में स्थान दें इसका प्रयास किया जाना चाहिए।

ऐसा प्रयास करने के इच्छुकों की सहायता के लिए यहाँ कुछ विभिन्न धाराओं का भी विवरण दिया जा रहा है। उनमें है १. टहलना-अभाव में स्थानिक दौड़ चाल २. अशक्तों के लिए विस्तर पर ही पड़े-पड़े कर सकने योग्य व्यायाम की शृंखला। ३. थोड़े समय में

और कम स्थान में ही अपने शरीर के अंगों को पर्याप्त श्रम देने की पद्धति अचल वस्तुओं को ठेलना ४. व्यायाम के साथ सामूहिकता एवं शौर्य-पराक्रम के संस्कार जमाने के लिए दण्ड व्यायाम। इनमें से प्रथम तीन व्यक्तिगत स्तर पर क्रियान्वित करने के लिए है और चौथी सामूहिक दृष्टि से अधिक उपयोगी है। यथा परिस्थिति इनका उपयोग किया जाना चाहिए।

सर्वोपयोगी व्यायाम—टहलना

शारीरिक और मानसिक व्यायाम का जैसा अच्छा समन्वय प्रातःकाल के टहलने में होता है उतना और किसी में नहीं। दुर्बल-रुग्ण, बालवृद्ध; नर-नारी सभी इस सरल व्यायाम का लाभ उठा सकते हैं। जिनकी शारीरिक स्थिति कड़े व्यायाम करने की नहीं है जिन्हें गठिया, दमा, रक्त-चाप, हृदय रोग आदि की शिकायत रहती है, वे भी अपने निकटवर्ती खुले स्थानों में टहल कर ताजगी प्राप्त कर सकते हैं और आवश्यक शारीरिक श्रम की आवश्यकता किसी कदर पूरी कर सकते हैं।

प्रभातकालीन जलवायु में सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों का—वायु दृष्टि से आक्सीजन का बाहुल्य रहता है। रात्रि का अन्त और दिन का आरम्भ एक ऐसा वातावरण उत्पन्न करता है जिसका सम्पर्क पौष्टिक भोजन से भी अधिक स्वास्थ्यवर्धक सिद्ध होता है।

यों श्रम की दृष्टि से टहलने में बहुत जोर नहीं पड़ता और व्यायाम की आवश्यकता उससे भली प्रकार पूरी हो सकेगी—यह समझ में नहीं आता। तो भी हमें यह मानकर चलना चाहिए कि उठक-पटक वाली क्रियाओं का महत्व कुछ ही हो—क्रमबद्ध, गतिवद्ध और व्यवस्थित क्रम से देर तक चलने वाली टहलने की क्रिया शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों में से प्रत्येक को समान रूप से इतना प्रभावित करती है, जितना कि कड़े और कष्टसाध्य व्यायाम नहीं कर सकते।

सबसे बड़ी बात है टहलने के साथ जुड़ी हुई आरोग्य सम्वर्धक प्रयास की मान्यता। लुहार दिन भर हथौड़ा चलाता है, फिर भी थोड़ी देर व्यायाम करने वाले की तरह पुष्ट नहीं हो पाता इसका एकमात्र कारण यह है कि सीखने वाले व्यायामशाला में इसी भावना से भरे रहते हैं कि इस क्रिया के माध्यम से हम स्वास्थ्य संवर्धन कर रहे हैं। प्रयास और भावना का सम्मिश्रण पहलवान की शरीर पुष्टि के रूप में सामने आता है जबकि लुहार अधिक श्रम करने पर भी उतने लाभ नहीं उठा पाता, पोस्टमैन हर दिन डाक बाँटने के लिए मीलों घूमता है, पर टहलने वाले का एक घण्टे का प्रयास ही स्वास्थ्य सुधार देता है इसका कारण टहलते समय आरोग्य वृद्धि की भावना के संकल्प का जुड़ा रहना है। टहलना दूसरों के साथ गपशप करते हुए बेसिल-सिले चलने से लाभदायक नहीं होता। यह तो एक लकीर पीटने खाली सैर हुई। स्वास्थ्य संवर्धन के लिए टहला जाय तो उसमें शरीर को एक व्यवस्थित क्रम से और मन को आरोग्य संचय की मान्यता से भरा हुआ रहना चाहिए। प्रातःकाल टहलने की आदत को अपनी चर्या में स्थान देने से कितने ही अशक्त और रुग्ण व्यक्ति अपने खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने एवं समुन्नत बनाने में सफल हुए हैं।

गाँधीजी ने अपना टहलने का क्रम व्यस्त से व्यस्त परिस्थितियों में भी जारी रखने का प्रयत्न किया। संसार के श्रेष्ठतम व्यक्ति उनसे मिलने आते थे और अति महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा करते थे तो भी उन्होंने समय का व्यतिक्रम कभी नहीं होने दिया। नियत समय और नियत सीमा के भीतर ही वे चर्चा प्रसङ्गों को भली प्रकार पूरा कर लेते थे। टहलना यों एक साधारण बात समझी जाती है, पर गाँधी जी उसे दिनचर्या की नियमितता और स्वास्थ्य रक्षा की उपयोगिता के साथ जोड़ते थे और जहाँ तक सम्भव होता उसे अव्यवस्थित नहीं

होने देते थे। यों सामान्यतया वे प्रार्थना से पूर्व टहलने जाते थे, पर यदि वह समय किसी आवश्यक काम में निकल गया तो फिर प्रार्थना के बाद जाते थे। दो मील सवेरे और दो मील शाम को टहलना उनकी नियमित दिनचर्या का अङ्ग था। जिन्हें आवश्यक चर्चा करनी होती थी उन्हें वे अपने साथ टहलने में ले जाते थे।

महापन्डित थोरो टहलने को अपने जीवन की प्रमुख आवश्यकता मानते थे और उस नियमितता में कभी बाधा नहीं पड़ने देते थे। उन्होंने टहलने की उपयोगिता के सम्बन्ध में एक लेख भी लिखा था—जिससे उस जमाने के लोगों ने बहुत प्रेरणा ग्रहण की। थोरो के मित्र एमर्सन जन्म से ही बहुत दुबले थे। उन्हें थोरो ने टहलने के लिए प्रोत्साहित किया फलतः स्वास्थ्य सुधार में आशाजनक सफलता प्राप्त कर सके। डिकिन्स ने अति महत्वपूर्ण विचारों का सृजन घूमने के ही समय किया वे प्रातः जलपान करके घर से निकलते थे और प्रायः २० मील घूमकर तीसरे प्रहर वापिस आते थे। जो विचार उठते उन्हें डायरी में लिखते रहते और फिर रात को निश्चिन्ततापूर्वक उन्हें लिपिबद्ध करते। वे कहते थे जो कुछ मैंने किया या पाया है वह टहलने रूपी कल्पवृक्ष के ही अनुदान हैं।

स्वास्थ्य विज्ञानी बरवर मैकफेडन ने लिखा है—कोई व्यक्ति सामान्य शारीरिक श्रम अथवा विशिष्ट प्रकार का व्यायाम भले ही करता हो, पर उसे प्रतिदिन कम से कम दो घण्टा रोज नित्य ही टहलना चाहिए। उससे कम में शारीरिक श्रम की स्वाभाविक भूख बुझ नहीं सकती। दूसरे व्यायामों के साथ टहलने की तुलना नहीं करनी चाहिए, उसकी अपनी, उपयोगिता है और अपनी विशेषता है जो नित्य टहलने की आदत नहीं डालेगा वह स्वस्थ नहीं रह सकेगा।

टहलने की आवश्यकता पैदल चलने से भी पूरी हो जाती है। कई व्यक्ति प्रातःकालीन वेला में विभिन्न कार्यों में व्यस्त रहते हैं।

उद्योग धन्धे रेलवे आदि में काम करने वालों को प्रातःकाल समय मिल जाय यह आवश्यक नहीं। ऐसे व्यक्ति भी जब भी समय मिले पैदल चलकर टहलने से प्राप्त होने वाले लाभ से लाभान्वित हो सकते हैं। पैदल चलते समय उन्हें वैसी ही मनोभूमि बनाना चाहिए जैसा कि टहलने वालों के लिए आवश्यक है।

यह निर्विवाद सत्य है कि टहलने—पैदल चलने जैसा सर्वोपयोगी सर्व सुलभ व्यायाम और कोई नहीं है। मनुष्य शरीर रचना शैली का भी यही तकाजा है कि मनुष्य मानसिक श्रम की अपेक्षा शारीरिक श्रम अधिक करे। मस्तिष्क हमारे सम्पूर्ण शरीर का पञ्चमांश भी नहीं है। जबकि आज के समय की विडम्बना यह है कि मनुष्य हर काम के लिए कलों पर निर्भर रहकर शारीरिक व मानसिक श्रम के मध्य संतुलन नहीं रख पा रहा है यह असन्तुलन स्वास्थ्य हानि के रूप में सामने आ रहा है। इस असन्तुलन को पैदल चलने की प्रवृत्ति अपना कर बहुत कुछ मिटाया जा सकता है।

पैदल चलने—टहलने के समर्थन में भी चिकित्साविद एकमत हैं। स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी पुस्तकें उसके महात्म्य से भरी पड़ी हैं। किन्तु हम लोग श्रम का महत्व स्वीकारते हुए भी श्रम को सम्मान का चिन्ह नहीं मानते। 'जो कम काम करे वह बड़ा आदमी' की हीन वृत्ति ने हमें स्वास्थ्य सुख से वंचित करने में कोई कोर कसर नहीं, छोड़ी है।

हमारे देश में लोगों को अपने पैरों भरोसा कम और वाहनों पर अधिक रहने लगा है। बड़े-बड़े नगरों में घण्टों बस स्टेन्ड पर खड़े रहना गवारा हो जाता है किन्तु थोड़ी देर पैदल चलकर घर पहुँचना भला नहीं लगता। क्यों पैरों को कष्ट दिया जाय? किन्तु उन्हें क्या पता कि पैदल चलना स्वास्थ्य का प्रमुख आधार है जिसे पाश्चात्य जगत ने सहज रूप में स्वीकारा है। वहाँ पैदल चलने वालों के संघ है,

भ्रमण संस्थाएँ हैं। लोग सामूहिक रूप से भ्रमण करने में रुचि लेते हैं। हजारों किलो मीटर लम्बी सड़कों का निर्माण इस प्रयोजन से किया गया है।

एक सज्जन हैं जार्ज बान ओपेन—जर्मनी के शीर्षस्थ धनपतियों में से एक—स्वयं कार निर्माता हैं, उन्होंने १९६३ से अपना यह नियम बना लिया है कि जो भी अस्वस्थ—दुर्बल व्यक्ति उन्हें दिखाई पड़ता है उसे वे पैदल भ्रमण का परामर्श देते हैं। उन्होंने पैदल चलने वालों की एक संस्था की स्थापना की है। वे पैदल चलने वालों को एक डायरी देते हैं जिसमें वह ईमानदारी से अपने पैदल चलने का व उस प्रवृत्ति के द्वारा होने वाले लाभ का प्रति-दिन विवरण अंकित करते हैं। थोड़े ही समय पैदल चलने के कारण उनकी प्राण शक्ति व स्वास्थ्य में अपूर्व वृद्धि होने लगती है तो वे अन्य लोगों को भी इस परिवर्तन का रहस्य बताते हैं। धीरे-धीरे पैदल चलने वालों की संख्या बढ़ने लगी और अब तक यह ३, २५००० हो गयी।

इसका श्रेय निश्चिय ही श्री ओपेल को है। भ्रमण कर्त्ताओं की डायरी के आधार पर कई चिकित्सक भी कई रोगियों को पर्चियों पर दवा लिखने की बजाय उन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिए पैदल चलने का परामर्श देने लगे हैं।

हमारे देश में याँत्रिक सभ्यता के पाँव अभी उतने नहीं पसरे हैं जितने इन देशों में। किन्तु श्रम को अप्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने की वृत्ति हमारे देशवासियों में उन लोगों से कई गुना अधिक ही है वहाँ के लोग श्रम चाहे वह कैसा ही क्यों न हो अपनी प्रतिष्ठा—गर्व की वस्तु मानते हैं हमारे यहाँ ऐसा नहीं। हम अपना विस्तर, पेटी, सूटकेस उठाना, अपने जूते स्वयं ठीक करना, अपने कपड़े आप धोना अपने वड़प्पन की तौहीनी मानते हैं अतः वहाँ पैदल चलने का रिवाज वाहनों के आधिक्य व यांत्रिक सभ्यता से परित्राण पाने के उद्देश्य से से किया गया हो तो भी हमें अपनी इस मिथ्या वृत्ति से परित्राण पाने के लिए पैदल चलने की प्रवृत्ति को अपनाना चाहिए।

टहलने का पूरा लाभ तभी मिल पाता है जब उसके साथ जुड़े नियमों का पालन भी किया जाय। टहलना एक कला है। एक नियमित प्रवाह, सरलता, क्रमबद्धता तेजी, उत्साह और सतर्कता का सम्मिश्रण उसमें होना चाहिए और यह अनुभूति रहनी चाहिए कि विश्व व्यापी महाप्राण में—महा सागर में से उपयोगी तत्व अधिग्रहण करने के लिए हम किसी साहसिक शोध यात्रा पर निकले हैं।

टहलने में सारा वदन सीधा रहना चाहिए। कन्धे पीछे दवे हुए, सीना उभरा हुआ, शिर थोड़ा पीछे को निगाह एकदम सामने शरीर को इतना कड़ा नहीं करना चाहिए कि तनाव पड़े। चुश्ती रहनी चाहिए, पर साथ ही सरल स्वाभाविक मुलायमी भी माँस-पेशियों की बनी रहनी चाहिए। कमर से लेकर सिर तक का हिस्सा कुछ आगे की ओर तिरछापन लिए होना चाहिए जैसा कि अक्सर दौड़ते वक्त रखना पड़ता है।

मुँह वन्द रखा जाय। साँस नाक से ही लेनी चाहिए गहरी सांस लेने का अभ्यास करना चाहिए ताकि स्वच्छ वायु का प्रवेश शरीर में अधिकाधिक गहराई तक हो सके। अधूरी साँस से तो पूरे फेफड़ों को भी सक्रियता का लाभ नहीं मिलता। इसलिए उथली साँस लेने की आदत सामान्य समय में भी छोड़नी चाहिए। विशेषतया टहलने के समय तो इस बात का अधिक ध्यान ही रखना चाहिए कि गहराई तक पूरी साँस खींची जाय और पूरी ही बाहर निकाली जाय। यों जब भी टहला जा सके तभी अच्छा है, पर अधिक उपयुक्त समय यह है कि सूर्योदय से पहले ही आरम्भ कर दिया जाय और थोड़ा सूर्य निकलने तक पूरा कर लिया जाय। प्रातःकाल की वायु जितनी शुद्ध होती है; जितनी शीतल और सौम्य होती है, उतनी और किसी समय की नहीं। यदि जल्दी सोया जाय तो जल्दी उठा भी जा सकता है और नित्यकर्म से निवृत्त होकर घर से चल दिया जा सकता

हैं, ऐसी दशा में सूर्योदय तक यह सुखद प्रयास पूरा भी हो सकता है।

टहलते समय शरीर पर कपड़े कम एवं हल्के रखने चाहिए ताकि न केवल सांस के द्वारा ही स्वच्छ वायु प्राप्त हो वरन् रोमकूपों की समस्त त्वचा को भी उस उत्तम वायु का स्फूर्तिदायक स्पर्श प्राप्त होता रहे। घन्टे में तीन से चार मील तक चाल पर्याप्त है। बीमार, कमजोर, बूढ़े, बालक या मोटे आदमी की बात अलग है। महिलाएँ जिन्हें चलने का अभ्यास नहीं है, वे भी धीमी चाल से चल सकती हैं, पर उनका क्रम भी करीने का ही होना चाहिए।

अपने ही स्थान पर दौड़-चाल

जो टहलने के लिए समय न निकाल सकें उनके लिए सबसे सुगम तरीका यही है कि वे स्नान के बाद ५ मिनट अपने ही स्थान पर खड़े होकर कदमताल की तरह तेज गति से खड़े-खड़े पैर चलायें, फिर दौड़ने की मुद्रा उसी स्थान पर खड़े तेज कदम चलायें। इसे हृदय व श्वसन संस्थान के लिए आदर्श व्यायाम माना गया है। पाश्चात्य जगत में 'जॉगिंग' नाम से मशहूर यह व्यायाम अनेकानेक व्यक्ति करते नित्य प्रातःकाल देखे जा सकते हैं। चिकित्सकों ने 'हाई कोलेस्टेराल' से बचने के लिये इसे ही उचित तरीका माना है।

इस प्रक्रिया को थोड़ा संशोधित कर कुछ देर धीमे, कुछ देर तेज, कुछ क्षण सामने की ओर पैर पटकते हुए ताकि घुटनें पेट से छूते रहें एवं कुछ क्षण पैर पीछे पटकते हुए अपने ही स्थान पर खड़े होकर दौड़ चाल करें, ताकि पैरों के पोर पुठ्ठों को छूते चलें। इससे पैरों का समग्र व्यायाम हो जाता है—हाथ-पैर से रक्त तेजी से हृदय में पहुँचता है व उसकी शुद्धिकरण की गति फेफड़ों में बढ़ जाती है।

जिनके पास स्थान व समय दोनों न हों, पर लगन हो वे कुछ देर के लिए अपने टहलने वाला व्यायाम इस प्रकार कर सकते हैं।

अशक्तों के लिए व्यायाम

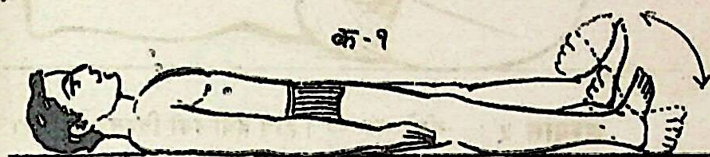
जो आयु अथवा रोग के प्रभाव से दुर्बल हैं, कमरे के बाहर जाकर टहलना भी नसीब नहीं ऐसे लोग विस्तर पर भी अपने शरीर को क्रम बद्ध ढंग से हिला-डुलाकर व्यायाम का लाभ काफी अंशों में उठा सकते हैं।

ध्यान रहे व्यायाम और सामान्य श्रम दोनों में बहुत भिन्नता है। श्रम कार्य पूर्ति की दृष्टि से किया जाता है और उस कारण उससे शरीर के किन्हीं अङ्ग विशेषों को श्रम मिलता है। वह तनाव पैदा करने वाला भी बन जाता है। इसके विपरीत व्यायाम में शरीर के हर अंग अवयव को स्वास्थ एवं क्रियाशील बनाये रखने की क्षमता का विकास और उसे बनाये रखने का उद्देश्य रहता है। अस्तु जिन्हें श्रम से थकान आती है वे भी व्यायाम द्वारा शरीर में ताजगी अनुभव करते हैं। जकड़न दूर होकर शरीर में खुलापन-हलका पन आता है। श्रम में शरीर की क्षमता के उपयोग का लक्ष्य होता है व्यायाम में शरीर की क्षमता के विकास और संरक्षण का लक्ष्य होता है। यह मूल भावना भुला दी जाय तो फिर व्यायाम के प्रति उत्साह भी घट जायगा और व्यायाम करने पर भी उसका लाभ अपेक्षित रूप से न हो सकेगा। अस्तु किसी भी व्यायाम के साथ उसकी मूल भावना का चिंतन भी जुड़ा रहना चाहिए।

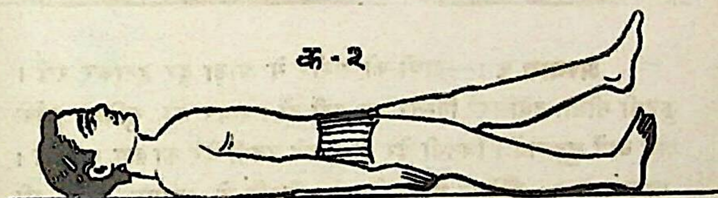
अभ्यास क्रम

अभ्यास १ :—सीधे लेट जायें। क्रमशः पैर के पन्जों को आगे पीछे, दायें बायें, गोल-गोल घुमायें। हाथ के पन्जों को क्रमशः पूरा खोलें और पूरी ताकत से बन्द करें। यह दोनों क्रम पांच-पांच बार दुहरायें। क्रमशः इनको बढ़ाया भी जा सकता है।

अभ्यास २ :—पैरों में लगभग ६ इन्च का फासला कर लें। अब पैरर के पन्जों को एडी पर लुढ़काते हुए जितना अधिक हो सके दायीं ओर वायीं ओर मोड़ें। यह क्रम पहले एक-एक पैर से करें फिर दोनों से एक साथ। (चित्र क—१)

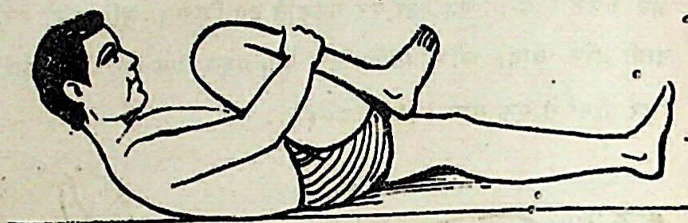


अभ्यास ३ :—सीधे लेटे रहकर एक पैर घुटना मोड़े विना उठायें और रख दें। यह क्रिया दूसरे पैर से करें। पाँच-पाँच बार एक-एक पैर से दुहरायें। यदि अपनी शक्ति स्वीकृति दे। तो दौनों पैरों से एक साथ भी यह क्रिया दुहरायें। (चित्र क—२)



अभ्यास ४ :—वायें पैर का घुटना मोड़ते हुए उसे अपनी छाती पर लायें पैर का पन्जा नीचे की ओर खिचा रखें दोनों हाथों से घुटने पर दवाव देकर उसे छाती से सटायें। जितना दवाव अच्छा लगे उतना ही दें। यही क्रिया दायें पैर से करें। एक-एक पैर से क्रमशः यह क्रिया पाँच-पाँच बार करें। (चित्र क—३)

क-३



अभ्यास ५ :—सीधे लेटे रहें। हाथ हथेलियाँ विस्तर पर सटा दें—हाथ सीधे रहें। अब सामान्य ताकत से जितना संभव हो कमर और नितम्ब ऊपर उठाने का प्रयास करें। पैर और पीठ विस्तर पर ही लगे रहें। यह क्रिया ५ बार दुहरायें। (चित्र क—४)

क-४



अभ्यास ६ :—हाथों को शरीर से थोड़ा दूर हटाकर रखें। कुहनी सीधी, हथेलियाँ विस्तर पर सटी हों। कमर को सुविधा पूर्वक दायें बायें लुढ़कायें। जितनी देर ठीक लगे उतनी देर का क्रम बना ले। प्रारम्भ में ३० सैकिण्ड भी पर्याप्त है। स्थिति के अनुसार बढ़ा भी सकते हैं। ५–१० मिनट तक भी इसे किया जा सकता है।(चित्र क—५)



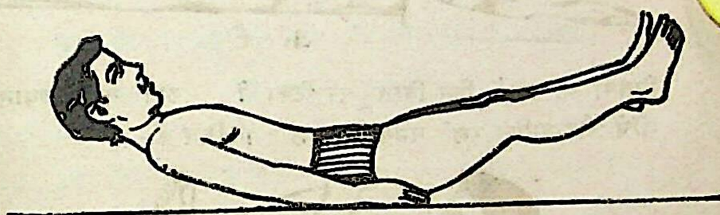
क-५

अभ्यास ७ :—बायाँ हाथ ऊपर की ओर सीधा करके उसे खिचाव दें, श्वास गहरी खींचें। हाथ वापिस लाते हुए श्वास निकाल दें। यही क्रिया दाहिने हाथ से करें। दोनों हाथों से इसे ५-५ बार दुहरायें। अन्त में दोनों हाथ ऊपर करके अङ्गड़ाई लेने जैसा तनाव सारे शरीर को दें। (चित्र क—६)



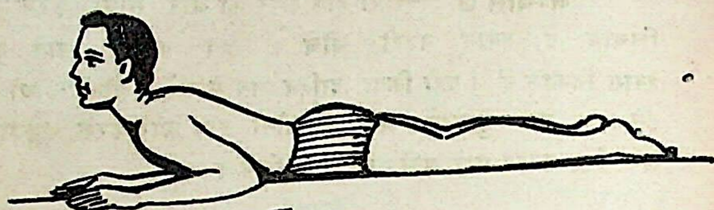
क-६

अभ्यास ८ :—सीधे लेटे हुए हाथ की हथेलियाँ विस्तर से सटा दें। पैर और सिर दोनों एक साथ जितना उठा सकें उठायें, फिर यथास्थित ले आयें। यह क्रम पाँच बार दुहरायें। (चित्र क—७)



क-७

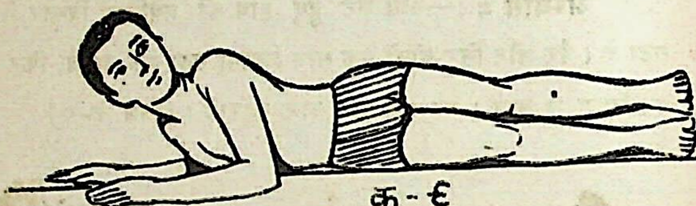
अभ्यास ९ :—बायीं करवट लेट जायें। कमर को दायीं ओर मोड़ते हुए बायीं कुहनी का सहारा लेकर धड़ उठायें जितना ऊँचा आसानी से उठा सकें उठायें। शरीर की स्थिति करवट की ही रहे न सीधे हों न पट्ट स्थिति तक शरीर घूमने दें। धड़ को वापिस विस्तर से टिका दें। यही क्रम पाँच बार दुहरायें। (चित्र क—८)



क-८

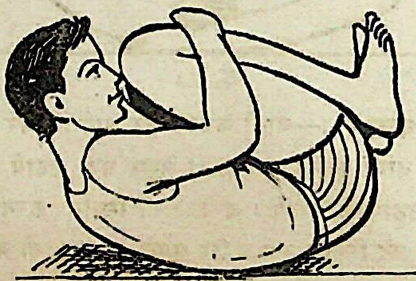
अभ्यास१० :—ऊपर लिखे क्रम की तरह ही दायीं करवट लेटकर यही क्रिया दुहरायें।

अभ्यास ११ :—पट्ट लेट जायें। कुहनी मोड़कर हथेलियां सीने के पास विस्तर पर टिकायें। सिर और सीना सामान्य शक्ति से



क-९

जितना उठे उठायें, फिर विस्तर पर टिका दें। उठाते समय श्वास खींचें और वापिस रखते समय श्वास छोड़ें। (चित्र क–९)



क-१०

अभ्यास १२ :—पहले सीधे लेटकर पोटली की तरह शरीर को समेट दें, फिर खोल दें। यह क्रिया धीरे-धीरे बिना किसी झटके के ३-४ बार करें। यही क्रम बायीं ओर दायीं करवट में दुहरायें। (चित्र क–१०)

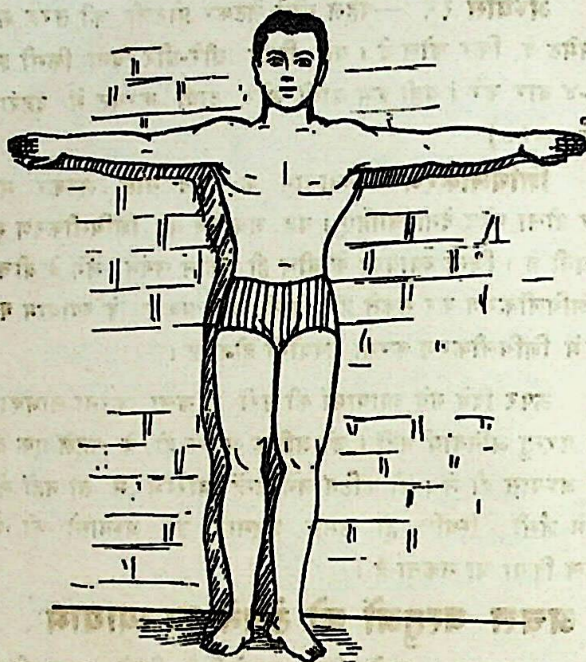
शिथिलीकरण :—व्यायाम के बाद सीधे लेटकर सारा शरीर ढीला छोड़ देना चाहिए। यह शवासन या शिथिलीकरण मुद्रा कहलाती है। जिन्हें व्यायाम के बीच ही थकान लगने लगे वे बीच में भी शिथिलीकरण कर सकते हैं। किसी भी प्रकार के व्यायाम करें, अन्त में शिथिलीकरण करना उपयोगी होता है।

ऊपर दिये गये व्यायामों की पूरी शृंखला करना लाभकारी तो है परन्तु अनिवार्य नहीं। जो अधिक अशक्त हो, वे पहले एक दम सुगम अभ्यास ही लें। जो कठिन लगे उन्हें प्रारम्भ में तो नहीं लें। बाद में जैसी स्थिति हो उसके अनुसार उन अभ्यासों को भी शामिल किया जा सकता है।

अचल वस्तुओं को ठेलने का व्यायाम

यह व्यायाम उनके लिए उपयोगी है जिन्हें स्थान की भी कमी हैं और समय की भी। अपने कमरे में ही बिना सामान को इधर उधर किये इस ढङ्ग के व्यायाम किये जा सकते हैं। १० मिनट भी यदि इसके लिए दिये जा सकें तो पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। चूँकि इससे व्यायाम के लिए अपनी ही शक्ति का उपयोग करना होता है, इस लिए कमजोर से कमजोर और ताकतवर से ताकतवर सभी प्रकार के व्यक्ति इस पद्धति के माध्यम से अपने शरीर के लिए व्यायाम की आवश्यकता की पूर्ति भली प्रकार कर सकते हैं।

अभ्यास १ :—दीवाल की तरफ सीना करके दीवाल से सटकर खडे हो जावें। दोनों हाथ कन्धे की सीध में फैलाकर हथेलियाँ दीवाल



अभ्यास-१

से सटा दें। अब सीने तथा हथेलियों का दबाव दीवाल पर डालने का प्रयास करें। यही क्रम दीवाल से पीठ सटा कर दुहरायें। समय ५ सैकिन्ड प्रत्येक के लिए।

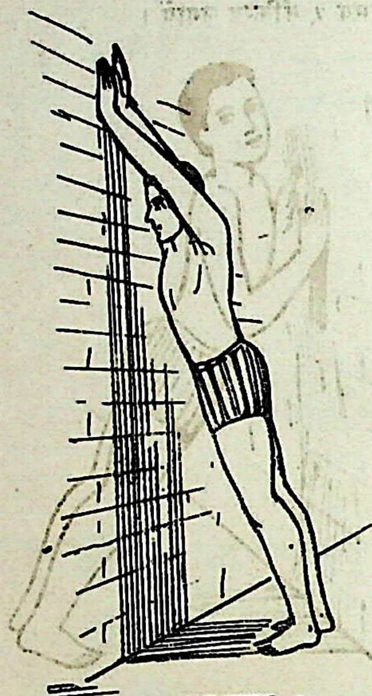
अभ्यास २ :—दीवाल से थोड़ा हटकर खड़े हो हथेलियाँ सीने की चौड़ाई के हिसाब से दीवाल पर टिका दें। कुहनी मोड़कर सीना और फिर दीवाल के पास तक ले जायें पर टिकायें नहीं। पैर से कन्धे तक पूरा शरीर सीधा रखते हुए दीवाल को ठेलें। यह क्रिया

पैरों और दीवाल के बीच की दूरी बढ़ा-घटाकर दो तीन कोणों से करें। प्रत्येक में समय ५ सैकिन्ड लगायें।



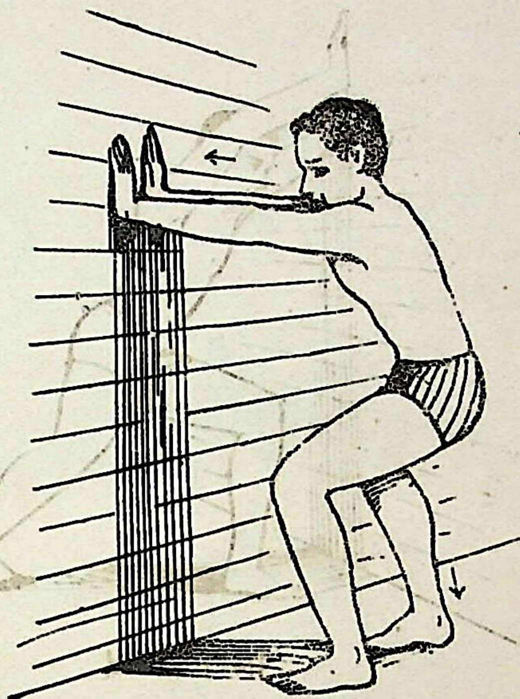
अभ्यास - २

अभ्यास ३ :—पैर दीवाल से दूर रखें। हथेलियाँ सीने की चौड़ाई के हिसाब से दीवाल पर टिकायें। एड़ी से लेकर हाथ की कलाई तक शरीर एक रेखा में सीधा रहे। इस स्थिति में दीवाल ठेलें। अभ्यास २ की तरह २-३ कोणों से यह अभ्यास दुहरायें। समय प्रत्येक में ५ सैकिण्ड।



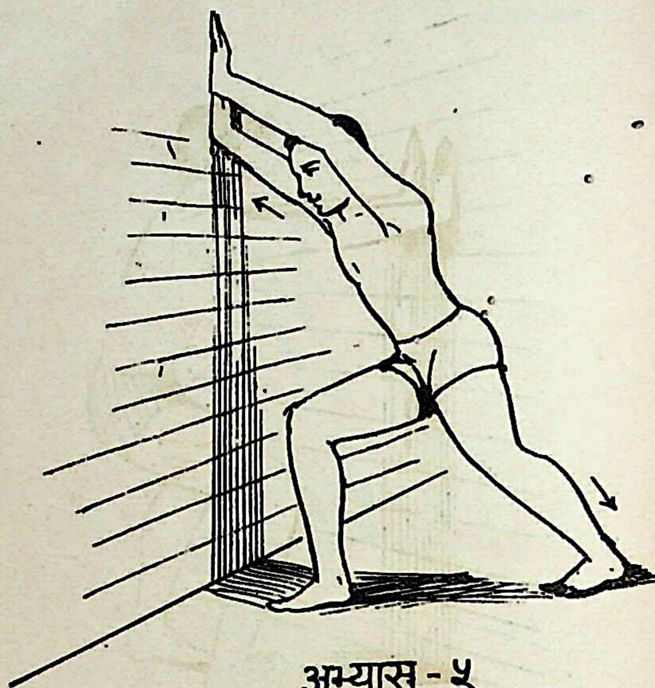
अभ्यास-३

अभ्यास ४ :—पहले की तरह हाथ दीवाल से टिकायें। दोनों घुटने आधे मोड़कर दीवाल ठेलें। पहले दोनों हाथों पैरों पर समान दबाव दें। फिर क्रमशः एक-एक तरफ के अङ्गों पर अधिक दबाव दें। यह क्रम बदलें। सब मिलाकर ८-१० सैकिन्ड समय पर्याप्त है।



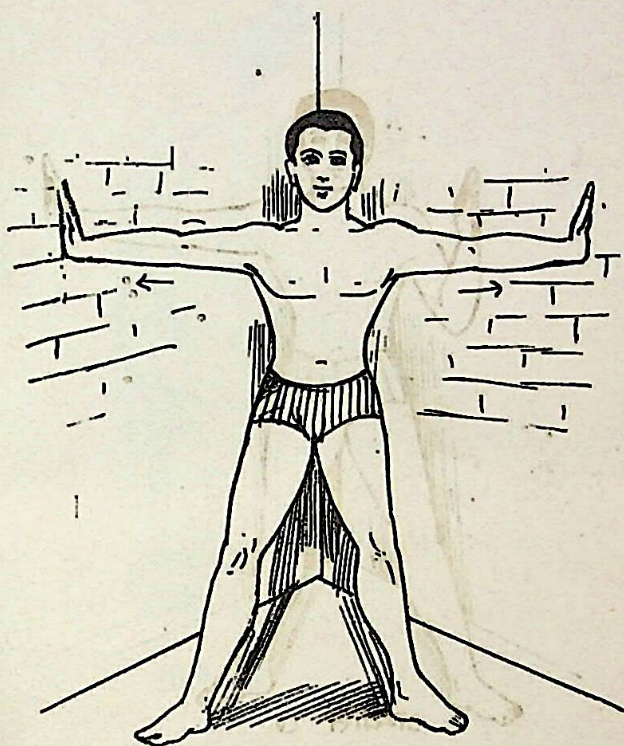
अभ्यास - ४

अभ्यास ५ :—बायाँ पैर आगे, दायाँ पैर पीछे करके पैंतरे से खड़े हों। आगे वाले पैर का घुटना मोड़ते हुए, पीछे वाला सीधा रखते हुए कुहनियाँ सीधी रखकर दीवाल ठेलें। यही क्रिया कुहनी मोड़कर करें। फिर यही दोनों क्रम पैर बदलकर दुहरायें। समय ८ से १० सैकिण्ड।



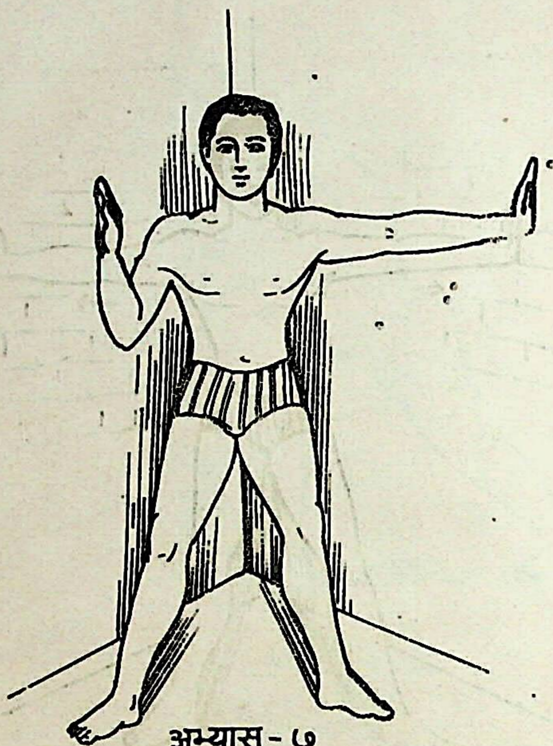
अभ्यास - ५

अभ्यास ६ :—इसके लिए कोना या दरवाजा चुनें। पैरों में फासला करके खड़े हों। दोनों हाथ कन्धे की सीध में दायें बायें फैलाकर दीवाल पर रखें। अब हाथों पैरों से एक साथ बाहर की ओर दबाव डालें। यह क्रम शरीर को विभिन्न कोणों पर रखकर दुहरायें। समय ८ से १० सैकिण्ड।



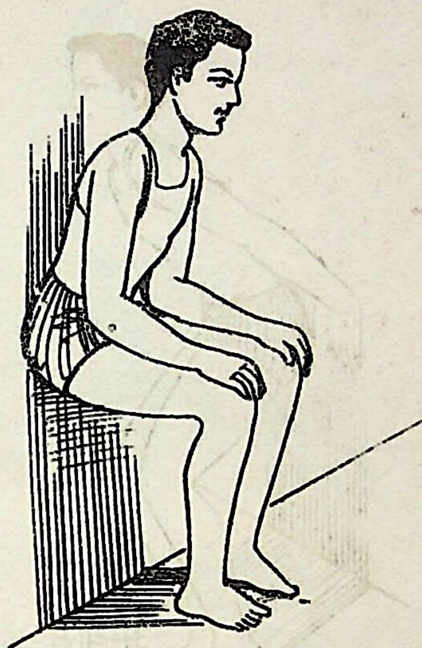
अभ्यास-६

अभ्यास ७ :—कोने या दरवाजे के सहारे यही क्रिया बायां हाथ मोड़कर दायाँ हाथ सीधा रखकर करें। वही क्रम हाथों की स्थिति पलटकर दुहरायें।



अभ्यास - ७

अभ्यास ८ :—दीवाल की ओर पीठ करके खड़े हों। कद के अनुसार पैर दीवाल से थोड़ी दूरी पर रखें। कमर दीवाल से टिका दें। कमर और पैरों के सहारे दीवार पर दबाव डालें। प्रारम्भ में कमर के मध्य से दबाव दें, दोनों पैरों से समान ताकत लगायें। फिर क्रमशः कमर का बायां-दायां भाग दीवार के स्पर्श में लाकर उसी ओर के पैर पर अधिक जोर देते हुए दबाव डालें।



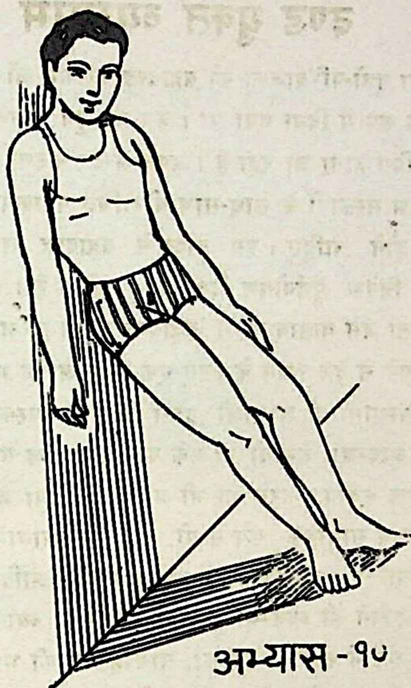
अभ्यास-८

अभ्यास ९ :—दीवाल की ओर पीठ करके खड़े हों। पहले की तरह पैर दूर रखें। हाथ पीछे की तरफ ले जाकर हथेलियाँ दीवाल से सटा दें। शरीर को कुरसी की तरह बनाते हुए, कमर को दीवाल से छुलायें, बिना दीवाल पर हाथों से दबाव डालें। पहले दोनों हिस्सों से समान दबाव डालें बाद में थोड़ा दायें-बायें घूमते हुए एक-एक तरफ से अधिक दबाव दें।



अभ्यास ९

अभ्यास १० :—दीवाल अपनी बायें कन्धे की ओर रखते हुए खड़े हों। बायाँ कन्धा दीवाल से टिका दें। एक-एक करके दोनों पैरों पर ताकत देते हुए कन्धे से दीवाल ठेलें। यही क्रम दायां कन्धा टिका कर दुहरायें। समय मिलाकर ८-१० सैकिण्ड।



अभ्यास - १०

आवश्यक नहीं कि यह सारे-सारे अभ्यास किये जावें। परि-स्थिति और आवश्यकतानुसार कुछ का चुनाव भी किया जा सकता है। वैसे पूरी शृंखला करें तो अधिक अच्छा है। प्रारम्भ में जितना समय बतलाया गया है उतना ही लगायें फिर क्रमशः बढ़ाया भी जा सकता है।

दण्ड युक्त व्यायाम

प्रज्ञा पुत्रों-परिव्राजकों को ब्रह्मदण्ड पराक्रम और धर्मानुशासन के प्रतीक के रूप में दिया गया था। अब यह युग सैनिकों में अधिकाधिक लोक प्रिय होता जा रहा है। अपने अन्दर करुणा और परोपकार के साधु सुलभ संस्कारों के साथ-साथ वीरोचित पराक्रम और दृढ़ता के संस्कार भी होने चाहिए। इस दृष्टि से ब्रह्मदण्ड लेकर चलने की परम्परा को विवेक पूर्णपोषण दिया जाना उचित है। आज की बढ़ती हुई अराजकता जैसे वातावरण में ब्रह्मदण्ड अपनी सुरक्षा तथा अनैतिक तत्वों को अपने से दूर रखने के लिए एक बहुत अच्छा माध्यम भी है। जहाँ प्रज्ञा संस्थानों या शाखाओं द्वारा किशोरों-वयस्कों के सामूहिक व्यायाम की व्यवस्था बनायी जा सके वहाँ उन्हें दण्ड सहित पंक्तिबद्ध खड़े होने, ड्रिल कवायद करने का भी अभ्यास कराया जाना चाहिए। उसके साथ-साथ सामूहिक रूप से पी. टी. जैसे व्यायाम दण्ड सहित कराये जाने चाहिए। इस पुस्तक में वर्णित आसनों आदि को भी सामूहिक रूप से कराने की व्यवस्था बन सके तो इससे व्यायाम के साथ-साथ सूत्रबद्ध रूप में कार्य करने का, सामूहिकता की भावना का भी पोषण और विकास होता है। दण्ड सहित व्यायाम करने से उसके साथ सैनिकों जैसे अनुशासित पराक्रम के संस्कार भी विशेष रूप से पनपते हैं। जहाँ सामान्य संख्या में भी ऐसे संस्कार वाली टोलियां उभरेगी वहाँ असामाजिक गुण्डा तत्वोंको उभरने-सक्रिय होने की संभावनाएँ बड़े अंशों में हट जायेगी।

इसी दृष्टि से इस पुस्तक में दण्ड सहित कवायद और व्यायाम के थोड़े से उपयोगी संकेत दिये जा रहे हैं। इन्हें स्काउटिंग, एन. सी. सी. अथवा व्यायाम शिक्षक की पृष्ठ भूमि वाले व्यक्तियों की सहायता से बड़ी आसानी से कहीं भी चलाया जा सकता है।

सामान्य निर्देश—पंक्तिबद्ध खड़े होने एवं मुड़ने, घूमने, चलने जैसे क्रमों के लिए एन. सी. सी. के प्रचलित निर्देशों (कॉशनों) का उपयोग किया जाना चाहिए। जैसे—सावधान, विश्राम, बायें घूम, दायें घूम, पीछे घूम, कदमताल, तेज चल, बायें मुड़, दायें मुड़ आदि। इनके साथ दण्ड हाथ में लेने और उनकी स्थितियों के निर्देश यहाँ दिए जा रहे हैं।



हस्त दण्ड

१. हस्त दण्ड :—इस स्थिति में दण्ड का मध्य भाग दाहिने हाथ की मुट्ठी में रहता है। दण्ड धरती के समानान्तर और उसके

दोनों सिरे आगे पीछे की ओर रहते हैं। सामान्य रूप से इसी स्थिति में आकर खड़ा हुआ जाता है।



बगल दण्ड

२. बगल दण्ड :—इस मुद्रा में दण्ड बायीं बगल से रहता है। दण्ड का अगला सिरा बायीं हथेली की पकड़ में। हथेली ऊपर की ओर, अंगूठा बाहर की ओर रखते हुए दण्ठ का अगला हिस्सा मुठ्ठी में दबा लिया जाता है तथा दण्ड का पिछला हिस्सा बायीं बगल में दबा रहता है।

३. परिवर्तन मुद्रा :—हस्त दण्ड से बगल दण्ड या बगल दण्ड से हस्त दण्ड की स्थिति में लाने के लिए बीच में यह मुद्रा बनती है। यदि हस्त दण्ड से बगल दण्ड की स्थिति में जाना है तो बगल दण्ड



परिवर्तन दण्ड

का निर्देश दिया जायगा। नं० १ में दायें हाथ को घुमाकर दण्ड का अगला सिरा बांये हाथ की बगल में दबाकर, बांये हाथ से निर्धारित ढंग से उसका दूसरा सिरा पकड़ लिया जाता है। नं० २ बोले जाने पर

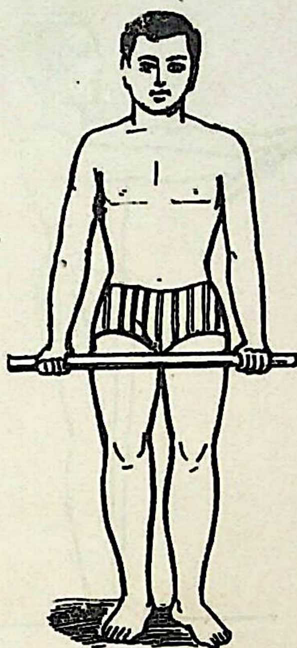
दायां हाथ दण्ड पर से हटा कर अपनी स्वाभाविक स्थिति में ले आते हैं।

यदि बगल दण्ड से हस्त दण्ड की स्थिति में आना है तो 'हस्त दण्ड' निर्देश दिया जायगा। नं० १ में दायें हाथ की हथेली दण्ड के मध्य भाग पर रख कर मुट्ठी बांध ली जाती है। नं० २ में बांये हाथ की पकड छोड़ कर उसे सामान्य स्थिति में सीधा कर दिया जाता है तथा दण्ड सहित दाहिना हाथ हस्तदण्ड की स्थिति में ले आते हैं। चलते समय हस्त दण्ड की स्थिति में दोनों हाथ हिलेंगे। बगल दण्ड की स्थिति में केवल दाहिना हाथ हिलाया जाता है।

व्यायाम के लिये तैया —यह निर्देश व्यायाम कराते समय दिया जाता है। भिन्न-भिन्न व्यायामों के लिए भिन्न-भिन्न मुद्रायें निश्चित हैं, जिन्हें व्यायामों के पूर्व दिया जा रहा है। यह निर्देश हस्त दण्ड की स्थिति में दिया जाना है।

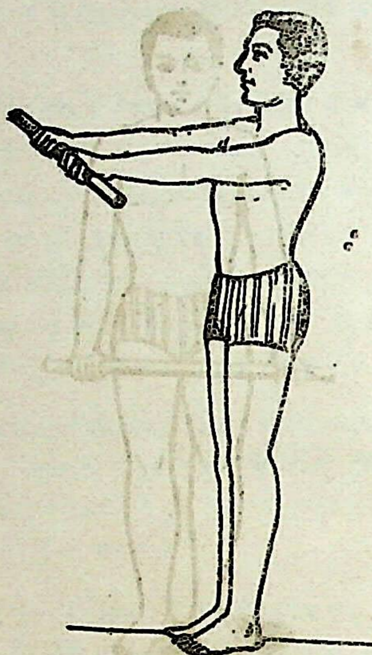
तैयार I—यह निर्देश मिलते ही उछल कर पैरों में फासला करते हुए दण्ड का आगे वाला सिरा बायें हाथ में पकड़ते हुए दायाँ हाथ खिसका कर दूसरे सिरे पर कर लिया जाता है। (चित्र अ १) पुनः हस्त दण्ड का निर्देश मिलने पर दाहिना हाथ खिसका कर दण्ड के मध्य में लाते हैं और उछलकर पैरों को मिलाते हुए दोनों हाथ हस्त दण्ड की सामान्य मुद्रा में ले जाये जाते हैं। आगे जो व्यायाम दिए जा रहे हैं वे इसी तैयारी की मुद्रा से प्रारंभ किए जाने वाले हैं।

अभ्यास १—तैयार स्थिति से क्र १ में दोनों हाथों का सामने कंधों की सीध तक सीधा उठायें (चित्र अ २) क्र. २ में वहीं से सीधे हाथ ऊपर ले जायें (चित्र अ-३) ३ में क्र. १ की स्थिति तथा ४ में तैयार की स्थिति में आते हैं।



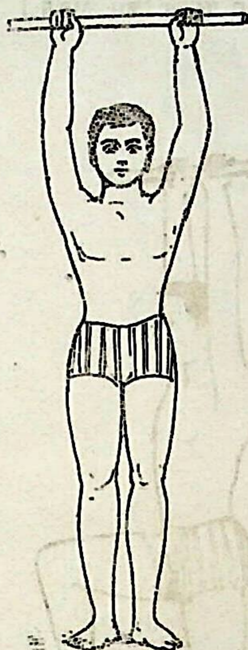
अ-१

अभ्यास २—क्र. १ में चित्र अ-२ की स्थिति, सामने की ओर कंधे की सीध में हाथ। क्र २ बायीं ओर घूमते हुए दायाँ घुटना जमीन की ओर मोड़ें, बाया घुटना सामने की ओर मोड़ें। हनुमान बैठक जैसी स्थिति बनाते हुए हाथ ऊपर की ओर तान दिए जावें। (चित्र अ-४) क्र. ३ में पुनः १ की स्थिति तथा ४ में तैयार की स्थिति। इसी क्रम से दायीं ओर मुड़ते हुए १, २, ३, ४ क्रम संख्या के साथ यही मुद्रा दुहरायी जाय।



अ-२

अभ्यास ३—क्र. १ में हाथों को बायीं ओर झुलाते हुए बायाँ हाथ कंधे की सीध में सीधा खींच दें। दायें हाथ की कुहनी मोड़ कर दण्ड का दूसरा सिरा भी बायें हाथ से सटाकर रखें। सीना सामने की ओर रहे, गर्दन दण्ड की दिशा में घुमादी जाय (चित्रअं-५) क्र. २ में तैयार की स्थिति में वापिस आयें। क्र. ३ में यही मुद्रा दाहिनी ओर हाथ झुलाते हुए बनायें। क्र. ४ में पुनः अपने स्थान पर हाथ लायें।

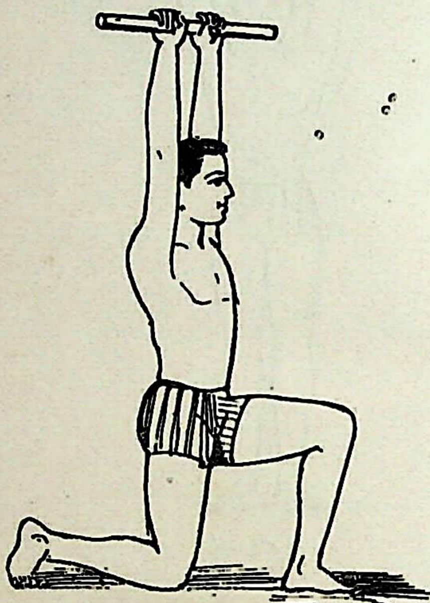


अ - ३

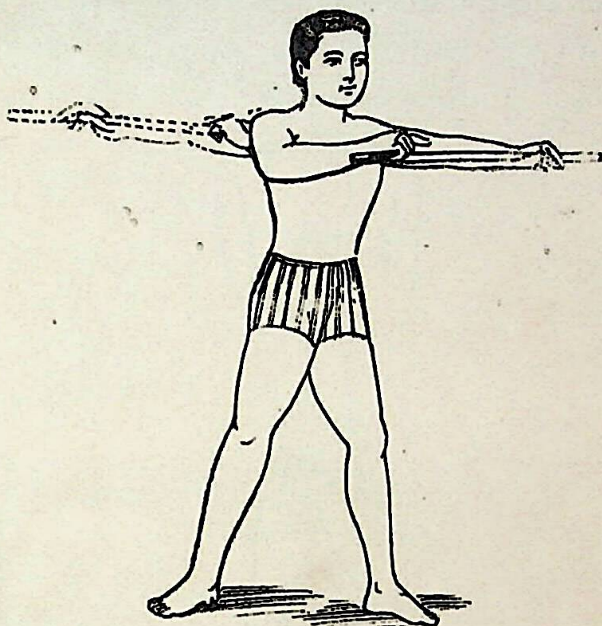
अभ्यास ४—क्र. १ में अभ्यास ३ की तरह बायीं ओर हाथ ले जाते हुए कंधे की सीध में न रुककर सीधे ऊपर ले जावें। क्र. २ में दाहिनी ओर उसी स्थिति से हाथ गुजारते हुए सामान्य स्थिति में वापिस लौट आयें क्र. ३ और ४ में ऐसा ही चक्कर दायीं ओर से हाथ झुलाते हुए पूरा करें। (चित्र अ-६)

तैयार II—इसमें तैयार I जैसी ही मुद्रा होगी. अंतर यह

होगा कि पैर खुले न रहकर मिले हुए रहेंगे। आगे जो अभ्यास दिए जा रहें हैं वह इसी स्थिति से प्रारंभ किए जावेंगे।



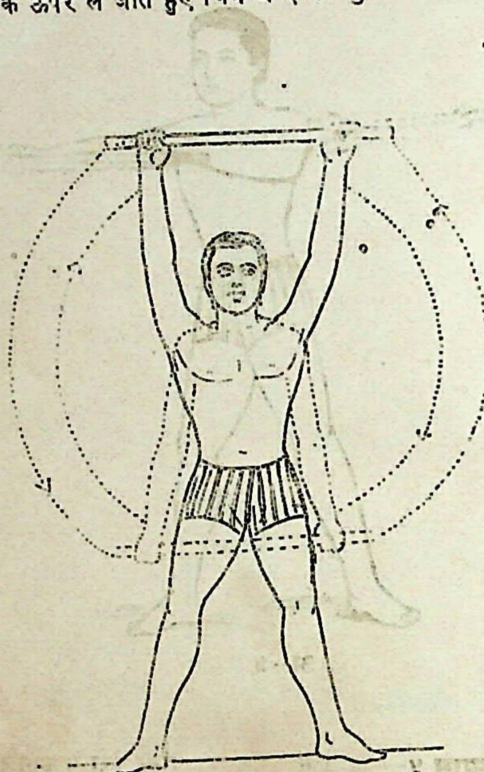
अ-४



अ-५

अभ्यास ५—क. १ में उछल कर दोनों पैरों में फासला किया जाय, तथा दण्ड सहित दोनों हाथ सामने कंधे की सीध में किये जायें जैसा चित्र अ-२ में है। क्र-२ पर उछल कर पुनः पूर्व स्थिति में लौट आयें। यह अभ्यास निर्देश 'एक-दो, एक-दो' बोलते हुए इच्छित अवधि तक कराया जा सकता है।

अभ्यास ६—क्र. १ में उछलकर पैरों में फासला करते हुए, हाथ कंधों के ऊपर ले जाते हुए चित्र अ-३ की मुद्रा बनायी जाती है।



चि—६

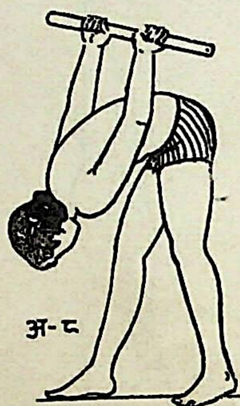
क्र. २ बोले जाने पर उछलकर पुनः पूर्व स्थिति में लौट आते हैं। इसे भी एक-दो बोलते हुए इच्छित संख्या में कराया जा सकता है।

अभ्यास ७--यह अभ्यास ५ और ६ का योग है। क्र. १ में उछलकर 'अ-२' की मुद्रा, क्र. २ में पूर्व स्थिति। क्र-३ में अ-३ की मुद्रा, क्र. ४ में पूर्व स्थिति। इस प्रकार इसे निर्देश १, २, ३, ४ बोलते हुए इच्छित अवधि तक कराया जा सकता है।



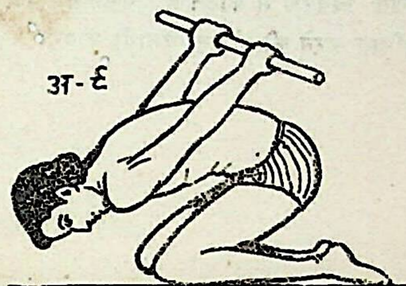
अ-७

अभ्यास ८—निर्देश क्र. १ पर बायां पैर आगे बढ़ाते हुए हाथों को चित्र अ-२ की स्थिति में लावें। क्र. २ में दोनों पैरों की एड़ियाँ उठाकर पंजों के बल शरीर को ऊपर खींचते हुए हाथ कंधों के ऊपर खींच दे (चित्र अ-७)। क्र. ३ पर पुनः क्र. १ की स्थिति में लौटें। यही क्रम दाहिना पैर आगे बढ़ाते हुए निर्देश क्र. १, २, ३; ४ के साथ दुहराया जाय।



तैयार III :—यह मुद्रा चित्र अ-१ की तरह बनेगी, परन्तु दण्ड आगे की ओर न रखकर पीछे की ओर दोनों हाथों से पकड़ा जायगा। अभ्यास ९ इसी में किया जायगा।

अभ्यास ६—निर्देश क्र. १ पर कमर आगे झुकाते हुए हाथों पीछे की ओर जितना ऊंचा उठा सके उठाते हैं-चित्र क्र. अ- ८ की है। क्र. २ में पूर्व स्थिति में लौट आते हैं। क्रमशः १, २ निर्देश ाते हुए इच्छित प्रमाण में यह अभ्यास कराया जाता है।



तैयार IV :—इसमें क्र. १ में मुद्रा तैयार III की तरह तथा २ में घुटनों के बल बैठ जाते हैं। अभ्यास १० इसी मद्रा से होगा।

अभ्यास १०—निर्देश क्र. १ में कमर आगे झुकाते हुए दण्ड हत हाथों को पीछे ऊपर की ओर उठाते हैं। क्र. २ में वापिस पूर्व ति में लौट आते हैं। चित्र क्र. अ—६ की तरह

तैयारी की स्थिति से दण्ड की स्थिति में आने के लिए निर्देश से थे' दिया जाता है। तैयार I, II और III में जैसे थे बोलने पर १ में दाहिना हाथ के मध्य में खिसका कर नं. २ में बायें हाथ की ड़ छोड़ते हुए दोनों हाथ हस्त दण्ड की स्थिति में आते हैं। तैयार से हस्त दण्ड की स्थिति में आने के लिए क्र. १ में खड़े होते हुए

दाहिना हाथ दण्ड के मध्य तक खिसकाते हैं और क्र. २ में हस
की स्थिति में लौट आते हैं।

दण्ड व्यायाम के साथ प्रहार और उनकी रोक की
जोड़ा जा सकता है। इसका अभ्यास-२ के जोड़ों में, अलग-अलग
सामूहिक रूप से भी कराया जा सकता है। परन्तु इसका शिक्ष
चित्रों एवं लिखित विवरण से कठिन है। संभावना देखकर
विकसित-क्रियान्वित करने की योजना बनायी जायगी।

